जैन पाठावली

[भाग पाँचवाँ]

द्रव्य-सहायक

औरंगाबाद निवासी श्री हस्तीमलजी सा. देवड़ा ने
जैन पाठावलियों के प्रकाशन खर्च में
५०००) रुपये भेंट प्रदान किये हैं।
अतः इस उदारता के लिए
वे धन्यवाद के पात्र हैं।

—प्रकाशक

जैन पाठावली

[भाग पाँचवाँ]

प्रकाशक :—

श्री श्वे० स्था० जैन कॉन्फरेन्स ऑफिस

जैन पाठावली

[पांचवां भाग]

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशक—
श्री श्वे० स्था० जैन कॉन्फरेन्स ऑफिस
बम्बई नं० ३

प्रथमावृत्ति १०००	मूल्य १रु.	वी० सं० २४७८ ई० सन् १९५२

श्री जालमसिंह मेड़तवाल के प्रबन्ध से
श्री गुरुकुल प्रिं० प्रेस, ब्यावर में मुद्रित।

जैन पाठावली
[पांचवां भाग]
वि ष या नु क्र म णि का

३—तत्त्व विभाग

४—संवाद-विभाग

५—काव्य विभाग

निवेदन

अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरन्स की ओर से तैयार किये गये धार्मिक शिक्षण का यह सारा ही पाठ्यक्रम स्कूलों, पाठ–शालाओं और श्राविकाशालाओं में पाठ्य पुस्तक के रूप में चलाने के लिए प्रकट करते हुए हमें आनन्द का अनुभव हो रहा है।

आप जानते हैं कि गत कितनेक वर्षों से जैन-संस्कृति, तथा जैन-तत्त्वों का सरल ज्ञान–प्राप्ति के साधन के लिए हिन्द भर की जैन स्कूलें और जैनशालाएँ एक सर्वमान्य और सर्व सामान्य अभ्यास क्रम के लिए कॉन्फरन्स से बारंबार मांग कर रही थीं। जिस पर से कॉन्फरन्स के घाटकोपर अधिवेशन ने इस कार्य के लिए एक समिति की रचना की। समिति ने एक विद्वत्समिति बनायी। इस कार्य में प्रखर सेवाभावी जैन-तत्त्वज्ञान के अनुभवी श्री संतबालजी का सहयोग उल्लेखनीय है। श्री संतबालजी के पास आवश्यक्तानुसार विद्वानों को रखकर यह कार्य प्रारंभ करवाया। उसके बाद इस पाठ्य-क्रम का संशोधन विद्वान् मुनिवरों व श्रावकों से भी कराया गया। इस प्रकार पांच वर्ष के प्रयत्न और अनेक संशोधन-संवर्द्धन के बाद अब ये पाठ्य-पुस्तक जैन-समाज के बालकों के शिक्षण में सहायभूत होने के लिए प्रकाशित किये जा रहे हैं।

यह पुस्तकमाला, अपनी जैनशालाओं में, छात्रालयों में और स्कूलों में एक वर्ष से सात वर्ष तक क्रमिक शिक्षण दिया जा सके इस प्रकार

रची गई है। उसके सात विभाग हैं। सरल-कठिन भाषा कक्षा अनुसार विद्यार्थियों की योग्यतानुसार निश्चित की गई है। प्रत्येक पाठावली में १ शास्त्र विभाग, २ तत्त्व विभाग, ३ कथा विभाग, ४ काव्य विभाग मूल पाठों के साथ मर्म सामान्य समझ के पाठों की क्रमिक-मालाएँ गूंथी गई हैं। कक्षा और वर्गानुसार उसकी ऐसी रचना हुई है कि जिससे शिक्षक विद्यार्थियों की उत्तरोत्तर बुद्धि के अनुपात में पाठावलियों का उपयोग कर सकें।

ये पाठावली बालक पढ़ सके ऐसी भाषा में रचने पर भी बालकों को शिक्षक की सहायता अनिवार्य रहेगी। शिक्षक प्रत्येक पाठ पर पूर्ण अभ्यास के पश्चात, बालकों के सामने अधिक स्पष्ट रूप से रक्खें, अधिक सरलता से वे समझ सकें उस प्रकार पाठ देते रहें यह आवश्यक है। बालक पढ़ने मात्र से धार्मिक पाठों का रहस्य समझ सकें यह शक्य नहीं है। वे भाषा की दृष्टि से पाठ पढ़ सकें इसलिए सरल भाषा की योजना अवश्य की गई है; फिर भी पाठों का हार्द वे स्वयं सरलता से समझ सकें यह सम्भव नहीं है, इसलिए शिक्षक अच्छी तरह से अभ्यास पूर्वक इन पुस्तकों को पढ़ें, समझें और फिर बालकों को समझावें तभी इसके ध्येय की प्राप्ति होगी।

देते हुए शिक्षकवर्ग के जो जो सूचन-अनुभव मिलेंगे उन पर द्वितीयावृत्ति के समय खास तौर से ध्यान दिया जायगा।

हमारी कॉन्फरन्स की ओर से इन पाठावलियों को प्रगट करने का एक हेतु यह भी है कि कॉन्फरन्स समस्त समाज की प्रतिनिधि संस्था होने से उसकी ओर से ऐसी पाठावलियाँ प्रगट होने पर वह समस्त हिन्द की सर्व गुजराती और हिन्दी भाषा-भाषी हमारी जैन स्कूलों, छात्रालयों और जैन पाठशालाओं में पाठ्यक्रम के धोरण से चलाई जाय तो शिक्षण का क्रम एक समान रहे और उसकी उच्च कक्षाओं की परिक्षाओं का धोरण भी एक समान रह सके। इस प्रकार अखिल हिन्द के धोरण से, एक मध्यस्थ शिक्षण बोर्ड की व्यवस्था भी की जा सके। इन पाठावलीओं को हमारी सभी शालाएँ पाठ्यक्रम के तौर पर स्वीकार करेंगी ऐसी हमारी अपेक्षा है।

जैन-धर्म के मूल तत्त्व जैसे कि सत्यनिष्ठा, अहिंसा का सर्वांगी आचरण, भ्रातृभाव, मानवता, परिग्रह परिमाण आदि का विशिष्ट प्रकार से सादी, सरल, मधुर और बालयोग्य भाषा में अवतरित करने का इसमें प्रयत्न किया गया है। आशा है कि समाज इन पाठमालाओं को अवश्य अपनायेगी।

इस पाठावली को तैयार करने में हमारे समाज के जिन जिन मुनिराजों ने तथा श्रावकों ने सहायता दी है इस के लिए हम उनके आभारी हैं। पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा., पं० मुनिश्री पूनमचन्दजी म. सा., पं० मुनिश्री सदानन्दी (छोटेलालजी) म. सा., प्रो. अ. स. गोपाणी M. A. Ph. D., श्री रतनलालजी डोसी, श्री मानसंग भाई मंगलजी भाई, पं० नटवरलाल के० शाह आदि का सहयोग अधिक मिला है।

श्री धीरजलाल भाई के० तुरखिया ने धार्मिक शिक्षण समिति के मंत्री पद को उत्तरदायित्वपूर्ण निभा करके पाठ्य-पुस्तकों का सम्पूर्ण कार्य कराया है, यह उल्लेखनीय है।

इस पाठावली का प्रकाशन तथा उसके खर्च का आधा हिस्सा ब्यावर जैन गुरुकुल शिक्षण संघ ने उठाकर, कॉन्फरन्स के प्रति अपना अनुराग दिखलाया है उसके लिए मंत्री गण उनका अभिनन्दन करते हैं।

हमारी कॉन्फरन्स ने पंजाब-सिन्ध निराश्रित राहत कार्य, श्राविकाश्रम की स्थापना, संघैक्य योजना, एक प्रतिक्रमण, एक संवत्सरी, एक व्याख्यान और एक संघ की योजना आदि समाजोन्नति और धार्मिकोन्नति के कार्यों को करके आज तक समाज की जो यत्किंचित् सेवा की है उसमें इस पाठावली के प्रकाशन को सम्मिलित करके कुछ संतोष का अनुभव करती है, और ऐसे ही समाज सेवा के विशेष कार्य समाज के सहकार के द्वारा करने की उम्मीद रखती है। किं बहुना ?

चीमनलाल पोपटलाल शाह
खीमचंद मगनलाल वोरा
टी. जी. शाह
चुनिलाल कामदार
गीरधरलाल दामोदर दफतरी
मंत्रीगण, श्री श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेन्स ऑफिस
टी. जी. शाह बिल्डिंग, पायधुनी, बम्बई नं० ३

पाठकों और शिक्षकों से

'जैन पाठावली' अर्थात् जैन नाम से पहिचाने जाने वाले समुदाय को दिया जाने वाला शिक्षण। इस पाठ्यक्रम में बच्चों को केन्द्र-स्थान में रक्खा है। प्रान्तीय भाषा से देखा जाय तो चतुर्थ कक्षा में प्रविष्ट हुआ बालक इस पाठ्यक्रम के अनुसार जैन पाठावली के प्रथम वर्ग के योग्य समझा जायगा। इसी दृष्टि से सात वर्ष तक का यह पाठ्यक्रम मैट्रीक तक की योग्यता वाला विद्यार्थी कर सकेगा। इस बात को ध्यान में रखकर यह योजना की गई है। फिर भी अपवाद का स्थान तो है ही। बालक की ग्राहक शक्ति और संस्कार किस प्रकार के हैं? ये सब बातें देखकर शिक्षक स्वयमेव इस अपवाद का सदुपयोग कर सकेंगे।

शिक्षकों पर शिक्षण की सफलता का महत्वपूर्ण आधार है उसमें भी इस संपादन के पीछे तो शिक्षकों की योग्यता पर खास आधार रक्खा गया है ऐसा कहना अनुचित न होगा।

हमारी इच्छा तो यह थी कि शिक्षकों का तालीम वर्ग चलाकर, बाद में ही ऐसे शिक्षकों के हाथ में यह जैन पाठावली दी जाय। अभी तक यह इच्छा तो है ही फिर भी हमें इतना स्थायी अवकाश निकालने में जो मुसीबत है उसे पाठक स्वयं सरलता से समझ सकेंगे। कदाचित् एकाध मास जितना समय उस वर्ग के पीछे दिया जाए

तो भी उन सब शिक्षकों के लिए, वे एक महिने तक इस प्रकार शिक्षण लें, उसका सारा खर्च और व्यवस्था की संपूर्ण जवाबदारी लेने को कोई तैयार होगा या नहीं यह भी एक प्रश्न है। इसलिए इस सूचना में शिक्षकों को जो थोड़ा बहुत कहना है, कह दें, इससे थोड़ा-सा तो काम आएगा ही ऐसी अपेक्षा है।

(१) जैनधर्म सांप्रदायिक धर्म ही नहीं है। विश्व के अनेक धर्म कहाँ स्थिर है? किसलिए पैदा हुए और उनका अंतिम ध्येय क्या है? ये सब बातें तटस्थ होकर विचारना और अनेकान्त दृष्टि से न्याय तोलन करना इसी में ही जैनदर्शन का महत्व है। इस पाठ्यक्रम के पीछे यह विचारश्रेणी प्रधानतया होने से इसमें जो सांप्रदायिक बातें रक्खी है, वे भी इसी प्रकार रक्खी गई है जिसमें संकुचितता की बू तक न आवें।

संसार में धर्म के नाम से होने वाले अनेक अनिष्ट और उन्हें दूर करने के उपाय का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करना वह मुख्यरूप से शिक्षकों की योग्यता पर अवलंबित है। इस पाठ्यक्रम के पुस्तकों में से इस प्रकार का दोहन करके बालक, बालिकाओं को शिक्षक भाई व बहिनें परोसेंगे ऐसी खास अपेक्षा है।

को नूतनता दिखेगी। ऐसा जिन्हें मालूम होवे उन्हें सहसा अभि-प्राय न बाँधकर विशाल दृष्टि से विचारना अथवा पूछना चाहिये।

(३) पाठ में आने वाले पद्य और काव्यविभाग के काव्य बालकों को मौखिक कराने के हैं। उनके अर्थ व भावार्थ अच्छी तरह से समझाना चाहिये।

(४) कथा साहित्य में परम्परा से चले आते रूढ़ प्रसंगों में नूतनदृष्टि दिखें तो उसके लिए भी उपरोक्त दृष्टि रखने की प्रार्थना है। कथा-कहानी बालक अपनी भाषा में कह सके वैसा अभ्यास कराना चाहिये।

(५) विभिन्न भावना के गहरे आशय के स्थान हैं वहाँ स्पष्टी-करण करने के लिए अधिक विस्तार किया गया होगा। अध्यापक विस्तार और भाव से जितना समझा सकें उतना विद्यार्थियों को समझावें। फिर भी पूरा न समझा सकें वहाँ शिक्षक निशान करके ऐसी प्रश्नोत्तरी तैयार करें अथवा वैसा स्थान बतलावें। उस पर से नई आवृत्ति में संशोधन हो सकेगा।

सामान्यदृष्टि से दें तो जैनधर्म ईश्वर को जगत्कर्त्ता नहीं मानता, तथापि प्रार्थना या प्रेमभक्ति में निर्दोषभाव ईश्वरकर्तृत्व बताने वाले काव्य और बातें कहीं २ दृष्टिगोचर होंगी। ऐसे शब्द जहाँ दिखाई दें वहाँ पर अपेक्षावाद विचारना। निषेध करने वाले जैन तत्त्वज्ञान में वहाँ चमत्कार देदिप्यमान दिखाई देगा।

जैनसूत्र समकित प्राप्त होने के बाद की भूमिका मुख्यतया बताते हैं, इसलिए उसके पूर्व की भूमिकाओं के विचार की पूर्त्ति करनी ही पड़ेगी।

इतने सूचन पर से और भी जो कुछ करने का रहता हो वह अध्यापक स्वयमेव कर सकेंगे।

माता-पिता और समाज से भी ऐसी आशा की जाती है कि वे इस पाठ्यक्रम का सत्य पान करें। कोई भी बात समझ में न आवे, अपूर्ण मालूम हो अथवा सचमुच ही भूलभरी मालूम हो तो भी जाहिर में चर्चा करने के पूर्व हमारा धीरजभाई तुरखिया का अथवा सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि जिसने इस पाठ्यक्रम में रही हुई दृष्टि को उदारता पूर्वक अपनाई है उस कॉन्फरन्स का और उसके कार्य कर्त्ताओं का ध्यान खेंचे और फिर ही जाहिर में चर्चा करें। इतने धैर्य से सभी को लाभ ही होगा।

श्वे. साधुमार्गीय, (स्थानकवासी) जैन-समाज और उसकी संप्रदायों के सिवाय इस पाठ्यक्रम का उपयोग श्वे. मंदिरमार्गी और दिगम्बर समाज भी करे यह इच्छनीय है।

धीरजलाल के. तुरखिया
मन्त्री, श्री धार्मिक शिक्षण समिति
जैन गुरुकुल ब्यावर

संतबाल
राजकोट ता. १४-८-४६

जैन पाठावली

(पाँचवाँ भाग)

प्राकृत-प्रबोध

[प्राकृत-भाषा का संक्षिप्त व्याकरण]

(प्राकृत भाषा का बोध कराने वाला प्राकृत शब्द 'प्रकृति' शब्द से बना हुआ है। 'प्रकृति' का एक अर्थ स्वभाव भी होता है। इसलिए जो भाषा स्वाभाविक है वह 'प्राकृत' शब्द से पहचानी जाती है। अर्थात् मनुष्य को जन्म से प्राप्त बोल-चाल की स्वाभाविक भाषा प्राकृत भाषा है और वह लोकभाषा है। इस लोकभाषा में ही भ० महावीर ने धर्मोपदेश दिया था। आजकल की प्रचलित लोकभाषाओं का मूल भी इस प्राकृत भाषा में ही रहा हुआ है। भ० बुद्ध ने भी पाली—प्राकृत भाषा के समान लोकभाषा में ही धर्मोपदेश दिया था। संस्कृत और अन्य भाषाओं की अपेक्षा प्राकृत भाषा विशेष व्यापक और मधुर है। इसका कारण इसकी सरलता है।)

प्राकृत में स्वरों का प्रयोग

१ प्राकृत में अ, इ, उ, (ह्रस्व) तथा आ, ई, ऊ, ए, ओ (दीर्घ)—केवल इतने ही स्वरों का प्रयोग होता है। ऋ, ॠ, लृ, ऐ और औ का प्रयोग प्राकृत भाषा में प्रायः नहीं होता है।

इतने सूचन पर से और भी जो कुछ करने का रहता हो वह अध्यापक स्वयमेव कर सकेंगे ।

माता-पिता और समाज से भी ऐसी आशा की जाती है कि वे इस पाठ्यक्रम का सत्य पान करें । कोई भी बात समझ में न आवे, अपूर्ण मालूम हो अथवा सचमूच ही भूलभरी मालूम हो तो भी जाहिर मे चर्चा करने के पूर्व हमारा धीरजभाई तुरखिया का अथवा सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि जिसने इस पाठ्यक्रम में रही हुई दृष्टि को उदारता पूर्वक अपनाई है उस कॉन्फरन्स का और उसके कार्य कर्ताओं का ध्यान खेचे और फिर ही जाहिर मे चर्चा करे । इतने धैर्य से सभी को लाभ ही हेगा ।

श्वे. साधुमार्गीय, (स्थानकवासी) जैन-समाज और उसकी संप्रदायों के सिवाय इस पाठ्यक्रम का उपयोग श्वे. मंदिरमार्गी और दिगम्बर समाज भी करे यह इच्छनीय है ।

धीरजलाल के. तुरखिया
मन्त्री, श्री धार्मिक शिक्षण समिति
जैन गुरुकुल ब्यावर

संतबाल
राजकोट ता. १४-८-४६

(इ) समास वाले शब्दों में प्रारम्भिक शब्द के 'ऋ' के स्थान पर 'उ' का ही प्रयोग होता है। जैसे मातृष्वसा का माउसिया (मोसी)

८- प्राकृत में 'क्लृप्त' के बदले 'किलित्त' और 'क्लृन्न' के स्थान में 'किलिन्न' हो जाता है।

९- प्राकृत में 'ऐ' के स्थान पर 'ए' और 'औ' के स्थान पर 'ओ' का प्रयोग होता है। जैसे वैद्य का वेज्ज; यौवन का जोव्वण।

प्राकृत में व्यञ्जनों का प्रयोग

१. प्राकृत में एक ही शब्द में आये हुए असंयुक्त क, ग, च, ज, त, द, प, ब, य और व का प्रयोग नहीं होता है अर्थात् उसका प्रायः लोप होता है। लोप होने पर बचा हुआ स्वर 'अ' और 'आ' के बाद आया हो तो प्रायः उसके स्थान पर क्रमशः य और या का प्रयोग होता है। जैसे:—

नगर का नयर, प्रजा का पया और शचि का सइ,

२- प्राकृत में किसी भी विजातीय संयुक्त व्यञ्जन का प्रयोग नहीं होता है। जैसे शुक्ल नहीं होता किन्तु 'सुक्क', पक्व नहीं परन्तु 'पक्क' होता है।

अपवाद:—ण्ह, न्ह, म्ह, ल्ह, व्ह, और न्द, उक्त नियम के अपवाद हैं।

३- प्राकृत में स्वर रहित केवल व्यञ्जन का भी प्रयोग नहीं होता। जैसे यशस् नहीं परन्तु 'जस' तमस् नहीं परन्तु 'तम' होता है।

४- तालव्य श् और मूर्धन्य ष् के स्थान में मात्र दन्त्य 'स' का प्रयोग होता है। जैसे शृगाल के स्थान पर 'सिआल' और कषाय के स्थान पर 'कसाय' होता है।

५- प्राकृत में संयुक्त व्यञ्जन के पहले आये हुए दीर्घ स्वर के स्थान में ह्रस्व स्वर का प्रयोग होता है। जैसे—आम्र का अंब और ताम्र का तंब।

६- प्राकृत में संयुक्त व्यञ्जन के पहले आये हुए 'इ' और 'उ' के स्थान पर क्रमशः 'ए' और 'ओ' का प्रायः प्रयोग होता है। जैसे बिल्व का बेल्ल और पुष्कर का पोक्खर।

७- (अ) प्राकृत में व्यञ्जन के साथ मिले हुए 'ऋ' के स्थान पर 'अ' का प्रयोग होता है, परन्तु कई शब्दों में आये हुए 'ऋ' का 'इ' या 'उ' भी हो जाता है। जैसे घृत का 'घय'; शृगाल का 'सिआल' और वृद्ध का 'वुड्ढ'।

(आ) व्यञ्जन के साथ नहीं मिले हुए केवल 'ऋ' के बदले 'रि' का प्रयोग होता है। जैसे ऋद्धि का रिद्धि।

(इ) समास वाले शब्दों में प्रारम्भिक शब्द के 'ऋ' के स्थान पर 'उ' का ही प्रयोग होता है। जैसे मातृष्वसा का माउसिया (मोसी)

८- प्राकृत में 'क्लृप्त' के बदले 'किलित्त' और 'क्लृन्न' के स्थान में 'किलिन्न' हो जाता है।

९- प्राकृत में 'ऐ' के स्थान पर 'ए' और 'औ' के स्थान पर 'ओ' का प्रयोग होता है। जैसे वैद्य का वेज्ज; यौवन का जोव्वण।

प्राकृत में व्यञ्जनों का प्रयोग

१. प्राकृत में एक ही शब्द में आये हुए असंयुक्त क, ग, च, ज, त, द, प, ब, य और व का प्रयोग नहीं होता है अर्थात् उसका प्रायः लोप होता है। लोप होने पर बचा हुआ स्वर 'अ' और 'आ' के बाद आया हो तो प्रायः उसके स्थान पर क्रमशः य और या का प्रयोग होता है। जैसेः—

नगर का नयर, प्रजा का पया और शुचि का सइ,

२- ख, घ, थ, ध, फ और भ—ये व्यञ्जन क्रमशः क् + ह्, ग् + ह्, त् + ह्, द् + ह्, प् + ह् और ब् + ह् से बने हैं; परन्तु प्राकृत भाषा के अङ्क २ के नियमानुसार विजातीय संयुक्त व्यञ्जनों का प्रयोग नहीं होता है। इसलिए शब्द की आदि में नहीं आये हों और असंयुक्त हों ऐसे सब शब्दों के आदि अक्षर का प्रयोग नहीं होता है; अर्थात् उन अक्षरों के स्थान पर सिर्फ ह् का ही प्रयोग होता है। जैसेः—मुख का मुह, मेघ का मेह, नाथ का नाह, बधिर का बहिर, सफल का सहल और शोभा का सोहा।

३. शब्द में आये हुए असंयुक्त ट का ड, ठ का ढ, ड का ल, न का ण, प का व, फ का भ और ब का व होता है। जैसे:- घट का घड, पीठ का पीढ, गुड का गुल, गमन का गमण, कूप का कूव, रेफ का रेभ और अलाबु का अलावु।

४. शब्द की आदि मे न का ण विकल्प से होता है। जैसे—नगर का नयर और णयर दोनों होता है।

५. शब्द की आदि के 'य' का 'ज' होता है। जैसे—यम का जम।

६. अनुस्वार के बाद के 'ह' का 'घ' होता है। जैसे—सिंह का सिंघ।

७. (अ) प्राकृत मे संयुक्त अक्षरों का निम्न आदेश होता है।

क्ष, ष्क और स्क	के	स्थान	पर	'ख'[1]	होता है।
त्य	के	,,	,,	'च'[2]	,,
द्य, र्य और य्य	के	,,	,,	ज	,,
ध्य और ह्य	के	,,	,,	झ	,,
र्त	के	,,	,,	ट[3]	,,
स्त	के	,,	,,	थ[4]	,,
ष्प और स्प	के	,,	,,	फ	,,
स्न ,, ह्न	के	,,	,,	ण	,,

१ कितनेक शब्दों में क्ष का छ भी होता है। जैसे क्षण का खण और छण, कितनेक में क्ष का झ भी होता है। जैसे-क्षीण का झीण।

२ अपवाद—चैत्य का चेइय।

३ अपवाद—मुहुत्त।

४ अपवाद—समस्त का समत्त।

	न्म	के	स्थान	पर	म	होता है।
ड्म	,, क्म	के	,,	,,	प	,,
ष्ट	,, ,,	के	,,	,,	ठ[५]	,,

जैसे—क्षय का खय, पुष्कर का पोक्खर, स्कंध का खंध, त्याग का चाय, मद्य का मज्ज, कार्य का कज्ज, शय्या का सेज्जा, ध्यान का झाण, गुह्य का गुज्झ, आर्त्त का अट्ट, स्तुति का थुई, बाष्प का बप्फ, स्पंदन का फंदण, निम्न का निण्ण, ज्ञान का णाण, जन्म का जम्म; कुड्मल का कुंपल, रुक्मिणी का रुप्पिणी और ओष्ठ का ओट्ठ होता है।

(आ) उपर्युक्त क्ष, ष्क, स्क आदि अक्षर जो शब्द के बीच में आये हों और उनके बाद में दीर्घस्वर या अनुस्वार न आये हों तो उसका द्वित्व (द्विरुक्ति) होता है और आठवें नियम के अनुसार फेरफार होता है। जैसे—मक्षिका का मक्खिया, उपाध्याय का उवज्झाय, गुह्य का गुज्झ, वर्त्ती का वट्टी, विस्तर का वित्थर, पुष्प का पुप्फ, बृहस्पति का बिहप्फइ, निम्न का निण्ण, विज्ञान का विण्णाण, मन्मथ का वम्मह, कुड्मल का कुंपल, रुक्मिणी का रुप्पिणी और काष्ठ का कट्ठ।

८. द्विरुक्ति वाले खख, छछ, ठठ, थथ, फफ, घघ, झझ, ढढ, धध और भभ आदि के स्थान पर क्रमशः क्ख, च्छ, ट्ठ, त्थ, प्फ, ज्झ, ड्ढ, द्ध और ब्भ होता है।

९. प्राकृत में ग्म के स्थान में म्म का और ह्व के स्थान में ब्भ का व्यवहार विकल्प से होता है। जैसे—युग्म का जुम्म और जुग्ग; विह्वल का विब्भल और विहल।

५—उष्ट्र का उट्ट आदि।

१०. प्राकृत में ह्रस्व स्वर के बाद आये हुए थ्य, त्स, श्च और त्स के स्थान पर च्छ का प्रयोग होता है। जैसे—पथ्य का पच्छ, अप्सरा का अच्छरा, पश्चात् का पच्छा और उत्साह का उच्छाह।

११. प्राकृत में श्न, ष्ण, स्न, ह्न और क्ष्ण के स्थान पर 'ण्ह' होता है। जैसे—प्रश्न का पण्ह, पार्ष्णि का पण्ही, स्नात का ण्हाअ, वह्नि का वण्ह, और तीक्ष्ण का तिण्ह।

१२. प्राकृत में श्म, ष्म, स्म और ह्म के स्थान पर म्ह का प्रयोग होता है। और ह्ल के स्थान पर ल्ह का प्रयोग होता है। जैसे—कुश्मान का कुम्हाण, ग्रीष्म का गिम्ह, विस्मय का विम्हय, ब्रह्मा का बम्हा और आह्लाद का आल्हाद।

प्राकृत में र्य के बीच में और र्ह के बीच में इ का प्रयोग होता है अर्थात् र्य का 'रिय' और र्ह का 'रिह' होता है। जैसे—भार्या का भारिया, गर्हा का गरिहा।

१४. संयुक्त ल के पहिले 'इ' रक्खा जाता है। जैसे क्लेश का किलेस, होता है।

१५. ह्य का ग्ह होता है। जैसे—गुह्य का गुग्ह।

१६. तन्वी, बह्वी, लघ्वी और गुर्वी जैसे स्त्रीलिङ्गी शब्दों में 'व' के पहिले 'उ' का प्रयोग होता है। जैसे—तन्वी का तणुवी, बह्वी का बहुवी इत्यादि।

१७. शब्द के अन्त्य व्यञ्जन का प्राकृत में लोप हो जाता है। जैसे तमस् का तम, तावत् का ताव, यावत् का जाव इत्यादि।

अपवाद:—(१) शरद् का सरओ, भिषक् का भिसओ इत्यादि। आयुष् का आउसो और आऊ; धनुष् का धणुह और धणू।

(२) स्त्रीलिङ्गी शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन का आ अथवा या होता है। जैसे सरित् का सरिआ और सरिया।

अपवाद:—विद्युत् का विज्जु, क्षुध् का छुहा, दिक् का दिसा, प्रावृष् का पाउस, अप्सरस् का अच्छरस् और अच्छरा; तथा ककुभ् का कउहा।

(३) रकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द के अन्त्य 'र' का 'रा' होता है। जैसे गिर् का गिरा।

१८. संयुक्त व्यञ्जन से पहिले क्, ग्, ट्, ड्, त, द्, प्, श, ष्, स्, जिह्वामूलीय (≍) तथा उपध्मानीय ( )( ) का प्राकृत में लोप होता है और बाकी शेष व्यञ्जन जो शब्द की आदि में न हो तो उसकी द्विरुक्ति होती है। तत्पश्चात् नियम ८ के अनुसार योग्य फेरफार होता है। जैसे—भुक्त का भुत्त, दुग्ध का दुद्ध, षट्पद् का छप्पअ, निश्चल का निच्चल, तुष्ट का तुट्ठ, निस्पृह का निप्पह, स्तव का तव।

१९. संयुक्त व्यञ्जन में पीछे आये हुए म्, न, और य् का लोप हो जाता है। और बचे हुए व्यञ्जन जो शब्द के आरम्भ में न हों तो द्विरुक्ति (द्वित्व) पाते हैं। जैसे—युग्म का जुग्ग, नग्न का नग्ग, श्यामा का सामा इत्यादि।

२०. संयुक्त अक्षर में पहिले या पीछे रहे हुए ल्, ब्, व् और र का लोप हो जाता है और बाकी रहा हुआ व्यञ्जन जो आरंभ में न हो तो उसका द्वित्व होता है। जैसे—उल्का का उक्का, श्लक्ष्ण का सण्ह, शब्द का सद्द, उल्बण का उल्लण, पक्व

का पक्क, घर्ग का वग्ग और चक्र का चक्क होता है। अपवाद—समुद्र का समुद्द और समुद्द तथा निद्रा का निद्दा और निद्रा होता है।

सन्धि-प्रकरण

स्वर-सन्धि

१ प्राकृत में एक पद में रहे हुए स्वरों के बीच में सन्धि नहीं होती है। जैसे—नई (नदी); परन्तु दो भिन्न पदों में रहे हुए स्वरों की सन्धि संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार विकल्प से होती है। जैसे—मगह × अहिवइ = मगह अहिवइ और मगहाहिवइ, जिण + ईसो = जिणईसो और जिणेसो दोनो होते हैं।

२. समास वाले शब्दों मे पूर्व शब्द का अंतिम स्वर प्रयोगानुसार ह्रस्व हो तो दीर्घ होता है और दीर्घ हो तो उसका ह्रस्व होता है। जैसे—सत्त + वीसा = सत्तावीसा (सप्तविंशति) गोरी × हर = गोरिहरं (गौरीगृहम्)।

३. इ, ई और उ, ऊ के बाद कोई विजातीय स्वर आवे और ए तथा ओ के पीछे कोई भी स्वर आवे तो दो पदों के बीच में भी संधि नहीं होती है। जैसे—नई × एत्थ (नदी अत्र), बहू एइ (वधू एति), वणे अडइ (वने अटति), अहो अच्छरियं (अहो आश्चर्यम्)।

६. जहाँ एक आदि पदों की द्विरुक्ति हुई हो, वहाँ दो पदों के बीच में विकल्प से 'म' रखा जाता है। जैसे—एक्क + एक्क = एक्कमेक्क या एक्केक्क (एकैकम्)।

७. कितनेक शब्दों में प्रयोगानुसार अनुस्वार का लोप हो जाता है। जैसे—वीसा (विंशतिः), सीह (सिंघ, सिंह)।

अव्यय-सन्धि

१ पद के पीछे आये हुए 'अपि' अव्यय के 'अ' का लोप विकल्प से होता है, और लोप होने के बाद अपि का 'प्' जो स्वर के बाद आया हो तो उस प् का व् हो जाता है। जैसे—कहं + अपि = कहंपि अथवा कहमवि (कथमपि), केण + अपि = केण वि अथवा केणावि (केनापि)।

२. पद के पीछे आये हुए 'इति' अव्यय के इ का लोप होता है और लोप होने पर 'ति' स्वर के बाद आया हो तो उसका द्वित्व (त्ति) हो जाता है। जैसे—कि + इति = किति, तहा + इति = तहत्ति।

नामों (संज्ञा) के रूपाख्यान

नामों के पाँच विभाग किये जा सकते हैं:—

१. अकारान्त तथा आकारान्त
२. इ कारान्त तथा ईकारान्त
३. उ कारान्त तथा ऊ कारान्त
४. ऋकारान्त (संबंध वाचक तथा विशेषण वाचक)
५. व्यञ्जनान्त

अन्तिम दो विभागों के नाम बहुत कम हैं। ऋकारान्त पुल्लिंग शब्दों को 'अर' अथवा 'आर' अंत वाले बना कर अकारान्त जैसे रूप चलाये जाते हैं। जैसे—पितृ का पिअरो (पिता) पिअरेण (पित्रा), भर्तृ का भत्तारो (भर्त्ता), भत्तारेण (भर्त्ता)। प्रथम व द्वितीया बहुवचन में, तृतीया व षष्ठी एक वचन में तथा सप्तमी बहुवचन में अन्त्य ऋ का विकल्प से 'उ' होता है और उकारान्त शब्द के अनुसार रूपाख्यान होते हैं। संबंध दर्शक ऋकारान्त शब्दों को प्रथमा एक वचन में आकारान्त बनाया जाता है।

२. व्यञ्जनान्त नामों के रूपाख्यान दो प्रकार से होते हैं। (१) अन्त्य व्यंजन का लोप करने पर पहिले तीन विभागों में से किसी एक विभाग के स्वरान्त की तरह, जैसे—सर (सरस्) का सरो, कम्म (कर्मन्) का कम्म होता है, (२) मूल व्यजनांत शब्द में अ या आ जोड़कर रूप बनाये जाते हैं। जैसे—शरद् का सरदो, आशीस् का आसिसा।

३. प्राकृत में द्विवचन नहीं है; परन्तु द्वित्व अर्थ को बनाने के लिये निम्न लिखित शब्दों में से किसी एक को नाम के बहुवचन के पहिले लगाया जाता है।

दुण्णि, विण्णि, बिण्णि, दो, दुवे, वे, बे।

४. संस्कृत नामों के रूपाख्यान तथा प्राकृत नामों के रूपाख्यान में कितना अधिक साम्य है? सो दोनों के रूपों की तुलना करने से स्पष्ट दिखेगा। कौंस ( ) में संस्कृत रूप दिये हैं उससे तुलना हो सकेगी।

का पक्क, वर्ग का वग्ग और चक्र का चक्क होता है। अपवाद समुद्र का समुद्द और समुद्र तथा निद्रा का निद्दा और निद्रा होता

सन्धि-प्रकरण

स्वर-सन्धि

१ पद के पीछे आये हुए 'अपि' अव्यय के 'अ' का लोप विकल्प से होता है, और लोप होने के बाद अपि का 'प' जो स्वर के बाद आया हो तो उस प् का व् हो जाता है। जैसे—कहं + अपि = कहंपि अथवा कहमवि (कथमपि), केण + अपि = केण वि अथवा केणावि (केनापि)।

२. पद के पीछे आये हुए 'इति' अव्यय के इ का लोप होता है और लोप होने पर 'ति' स्वर के बाद आया हो तो उसका द्वित्व (त्ति) हो जाता है। जैसे—कि + इति = किंति, तहा + इति = तहत्ति।

नामों (संज्ञा) के रूपाख्यान

नामों के पाँच विभाग किये जा सकते हैं:—

१. अकारान्त तथा आकारान्त
२. इ कारान्त तथा ईकारान्त
३. उ कारान्त तथा ऊ कारान्त
४. ऋकारान्त (संबंध वाचक तथा विशेषण वाचक
५. व्यञ्जनान्त

अन्तिम दो विभागों के नाम बहुत कम हैं। ऋकारान्त पुल्लिग शब्दों को 'अर' अथवा 'आर' अंत वाले बना कर अकारान्त जैसे रूप चलाये जाते हैं। जैसे—पितृ का पिअरो (पिता) पिअरेण (पित्रा), भर्तृ का भत्तारो (भर्त्ता), भत्तारेण (भर्त्ता)। प्रथम व द्वितीया बहुवचन में, तृतीया व षष्ठी एक वचन में तथा सप्तमी बहुवचन में अन्त्य ऋ का विकल्प से 'उ' होता है और उकारान्त शब्द के अनुसार रूपाख्यान होते हैं। संबंध दर्शक ऋकारान्त शब्दों को प्रथमा एक वचन में आकारान्त बनाया जाता है।

२. व्यञ्जनान्त नामों के रूपाख्यान दो प्रकार से होते हैं। (१) अन्त्य व्यंजन का लोप करने पर पहिले तीन विभागों में से किसी एक विभाग के स्वरान्त की तरह, जैसे—सर (सरस्) का सरो, कम्म (कर्मन्) का कम्म होता है, (२) मूल व्यजनांत शब्द में अ या आ जोड़कर रूप बनाये जाते हैं। जैसे—शरद् का सरदो, आशीस् का आसिसा।

३. प्राकृत में द्विवचन नहीं है; परन्तु द्वित्व अर्थ को बताने के लिये निम्न लिखित शब्दों में से किसी एक को नाम के बहुवचन के पहिले लगाया जाता है।

दुण्णि, विण्णि, बिण्णि, दो, दुवे, वे, बे।

४. संस्कृत नामों के रूपाख्यान तथा प्राकृत नामों के रूपाख्यान में कितना अधिक साम्य है? सो दोनों के रूपों की तुलना करने से स्पष्ट दिखेगा। कौंस ( ) में संस्कृत रूप दिये हैं उससे तुलना हो सकेगी।

५. प्राकृत में चतुर्थी विभक्ति नहीं है। चतुर्थी के स्थान में षष्ठी के रूप लिये जाते हैं। नपुंसक लिंग के रूपों में प्रथमा व द्वितीया विभक्ति में अन्तर होता है। शेष विभक्तियों के रूप पुल्लिंग के समान ही होते हैं।

नामों के रूपाख्यान

अकारान्त पुलिंग

'वीर' शब्द

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
१	वीरो, वीरे (वीरः)	वीरा (वीराः)
२	वीरं (वीरम्)	वीरे, वीरा (वीरान्)
३	वीरेण, वीरेणं (वीरेण)	वीरेहि वीरेहिं, वीरेहि, (वीरैः)
४	वीरस्स, वीराअ (वीराय)	वीराण, वीराणं (वीरेभ्यः)
५	वीरा, वीरत्तो, वीराओ-उ, वीराहि, वीराहिंतो (वीरात्)	वीरत्तो, वीराओ, वीराउ, वीराहि, वीरेहि, वीराहिंतो, वीरेहिंतो वीरासुंतो, वीरेसुंतो (वीरेभ्यः)
६	वीरस्स (वीरस्य)	वीराण, वीराणं (वीराणाम्)
७	वीरे, वीरम्मि, वीरंमि वीरे	वीरेसु-वीरेसुं (वीरेषु)
सं०	वीरो, वीरे, वीरा, वीर (वीर)	वीरा (वीराः)

अकारान्त नपुंसक लिंग

'कुल' शब्द

१	कुलं (कुलम्)	कुलाणि, कुलाइं, कुलाइँ (कुलानि)
२	,, ,,	,, ,, ,, ,,
३ से ७ तक पुल्लिंग अकारान्त वत्		
सं०	कुल (कुल)	कुलाणि, कुलाइं-इँ, (कुलानि)

इकारान्त पुंलिंग इसि (ऋषि) शब्द

वि०	एकवचन	बहुवचन
१	इसी (ऋषिः)	इसओ-उ, इसिणो, इसी (ऋषयः)
२	इसिं (ऋषिम्)	इसीणो, इसी (ऋषीन्)
३	इसीणा (ऋषिणा)	इसीहि, इसीहिं-हिं (ऋषिभिः)
४	इसये, इसिस्स, इसिणो (ऋषये)	इसीण-इसीणं (ऋषीभ्यः)
५	इसित्तो, इसीओ इसीउ, इसीहिंतो, इसिणो (ऋषेः)	इसित्तो, इसीओ, इसीउ, इसीहिंतो, इसीसुंतो (ऋषिभ्यः)
६	इसीणो, इसिस्स, (ऋषेः)	इसीण-इसीणं (ऋषीणाम्)
७	इसिंसि, इसिम्मि (ऋषौ)	इसीसु, इसीसुं (ऋषिषु)
सं०	इसि, इसी (ऋषे)	इसओ-उ, इसिणो, इसी (ऋषयः)

उकारान्त पुंलिंग भाणु शब्द

अनियमित रूप राय (राजन्) शब्द

वि०	एकवचन	बहुवचन
१	राया	राइणो, रायाणो
२	राइणं	राइणो, रायाणो, रण्णो
३	राइणा, रण्णा	राईहि, राइहिं, राईहि
४	राइणो, रण्णो	राईण, राईणं, राइण-णं,
५	राइणो, रण्णो	राइत्तो, राईओ-उ, राईहिं, राइत्तो राईहिन्तो,
६	राइणो, रण्णो	राईण, राईणं, राइण-णं
७	राइंसि, राइम्मि	राईसु, राईसुं
सं०	हे राया !	राइणो, रायाणो,

अप्प (आत्मन्) शब्द

१	अप्पा	अप्पाणो
२	अप्पाणं	अप्पाणो
३	अप्पणिआ, अप्पणइया अप्पणा	अप्पेहि, अप्पेहिं, अप्पेहिं
४	अप्पाणो	अप्पिण-णं
५	अप्पाणो	अप्पत्तो, अप्पात्तो
६	चतुर्थी वत्	

पूस (पूषन्) शब्द

१	पूसा	पूसाणो
२	पूसिणं	,,
३	पूसणा	पूसहि, पूसहिं, पूसहिं

४-६	पूसाणो	पूसिण, पूसिणं
५	पूसाणो	पूसत्तो, पूसात्तो इत्यादि

मघव शब्द के रूप

१	मघव, मघवा	मघवाणो
	शेष पूस शब्द वत्	

आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द 'माला'

वि०	एकवचन	बहुवचन
१	माला (माला)	मालाओ-उ, माला (मालाः)
२	मालं (मालां)	,, ,, ,, ,,
३	मालाअ-इ-ए (मालया)	मालाहि-हिं-हिं (मालाभिः)
४-६	,, ,, ,, (मालायै)	मालाण-णं (मालाभ्यः) (मालानाम्)
५	मालाओ-उ, मालाहिंतो (मालायाः)	मालाहिंतो-सुंतो, (मालाभ्यः)
७	मालाअ, मालाइ, मालाए (मालायाम)	मालासु-सुं (मालासु)
सं०	माले, माला (माले)	मालाओ-उ, माला (मालाः)

इकारान्त स्त्रीलिंग 'गइ' (गति) शब्द

१	गई (गतिः)	गइओ-उ, गई (गतयः)
२	गइं (गतिम्)	,, ,, ,, (गतीः)
३	गइअ, गईया, गईइ, गईए (गत्या)	गईहि, गईहिं, गईहिं (गतिभिः)
४	गइअ, गईया, गईइ, गईए (गतये, गत्यै)	गईण-णं (गतिभ्यः)

३	सव्वेण, सव्वेणं (सर्वेण)	सव्वेहि-हिं-हिँ (सर्वैः)
४	सव्वस्स (सर्वाय)	सव्वेसि, सव्वाहँ+ सव्वाण, सव्वाणं (सर्वेभ्यः)
५	सव्वत्तो, सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वा, सव्वाहिं, सव्वाहिंतो, सव्वह। (सर्वस्मात्)	सव्वत्तो, सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वाहि, सव्वेहि, सव्वाहिंतो, सव्वेहिंतो, सव्वासुंतो, सव्वेसुन्तो (सर्वेभ्यः)
६	सव्वस्स (सर्वस्य)	सव्वेसिं, सव्वाहं+ सव्वाण, सव्वाणं (सर्वेषाम्)
७	सव्वंसि, सव्वासि (सर्वस्मिन्) सव्वत्थ (सर्वत्र)	सव्वेसु, सव्वेसुं (सर्वेषु)

+ इस निशानी वाले रूप का प्रयोग क्वचित् होता है।

नपुंसक लिंग 'सव्व' के रूप

१	सव्वं (सर्वम्)	सव्वाणि, सव्वाइं-इँ (सर्वाणि)
	,, ,,	,, ,, ,, ,,

३ से सप्तमी तक के रूप पुंलिंग वत्

पुंलिंग ज (यत्) के रूप

वि०	एकवचन	बहुवचन
१	जे, जो (यः)	जे (ये)
२	जं (यम्)	जे, जा, (यान्)
३	जेण, जेणं, जिणा (येन)	जेहि, जेहि, जेहिँ (यैः)
४	जस्स, जास (यस्मै)	जेसि, जाण, जाणं (येभ्यः),

५	जम्हा (यस्मात्) जत्तो, जाओ, जाउ, जा, जाहि, जाहिंतो	जत्तो, जाओ, जाउ, जाहि, जेहि, जाहिंतो, जेहिंतो जासुंतो जेसुंतो (येभ्यः)
६	जस्स, जास (यस्य)	जेसिं, जाण, जाणं (यस्याम्)
७	जंसि, जास्सि, जाहिं, जाम्मि, जत्थ (यस्मिन् , यत्र)	जेसु, जेसुं (येषु)

जाहे, जाला, जइआ (यदा) ये तीन रूप यदा (जब) के अर्थ में आते हैं।

नपुसंक लिंग ज (यत्) के रूप

१	जं (यत्)	जाणि, जाइं, जाइँ (यानि)
२	,, ,,	,, ,, ,, ,,

शेष पुल्लिंग 'ज' वत्

पुंलिंग त, ण (तत्) के रूप

१	स, से (सः)	ते, णे (ते)
२	तं, णं (तम्)	ते, ता (तान्)
३	तेणा, तेणं, तिणा, णेणं, णेण (तेन)	तेहि--हिं--हिँ ; णेहि--हिं-हिँ ; (तैः)
४	तस्स, तास (तस्मै)	
५	त्तो, तत्तो, ताओ, ताउ, तम्हा, ताहि, ताहिंतो, ता, णत्तो, णाओ, णाउ, णाहि, णाहिंतो, णा (तस्मात्)	

६	चतुर्थी वत् (तस्य)	चतुर्थीवत् (तेषाम्)
७	तंसि, तास्सि, तहिं, ताम्मि, तत्थ, ताहे, ताला, तइआ, णंसि, णास्सि, णहि, णाम्मि, णत्थ, (तस्मिन्)	तेसु, तेसुं णेसु, णेसुं (तेषु)

नपुँसक लिंग 'त' (तद्)

१-२	तं, णं (तत्)	ताणि, ताइं, ताइँ (तानि)
	शेष पुलिंग वत्	णाणि, णाइं, णाइँ

पुंलिंग 'क' (किम्)

वि०	एकवचन	बहुवचन
१	के, को (कः)	के (के)
२	कं (कम्)	के, का (कान्)
३	केण, केणं, किणा (केन)	केहि, केहिं, केहिँ (कैः)
४	कस्स, कास (कस्मै)	कास, केसिं (केभ्यः) काण, काणं
५	कम्हा (कस्मात्) किणो, कीस, कत्तो, काओ, काउ, का, काहि, काहिंतो	कत्तो, काओ, काउ, काहि, केहि, काहिंतो, केहिंतो कासुन्तो, केसुन्तो, (केभ्यः)
६	चतुर्थी वत (कस्य)	चतुर्थी वत (केषाम्)
७	कंसि, कास्सि, कहिं, कम्मि, कत्थ, काहे, काला, कइआ, (कस्मिन्) (कदा)	केसु, केसुं (केषु)

नपुंसक लिंग 'क' (किम्)

१–२	किं (किम्)	काणि, काइं, काइँ (कानि)
	शेष पुंलिंग वत्	

पुंलिंग 'इम' (इदम्)

१	अयं, इमो, इमे (अयम्)	इमे (इमे)
२	इमं, इणं, णं (इमम्)	इमे, इमा, णे, णा (इमान्)
३	इमेण, इमेणं, इमिणा, णेण, णेणं (अनेन)	इमेहि-हिं-हि , णेहि-हिं-हि ; एहि, एहिं, एहिँ (एभिः)
४	इमस्स, से, अस्स (अस्मै)	सिं, इमेसिं, इमाण-इमाणं,
५	इमत्तो, इमाओ इमाउ; इमाहि, इमाहिंतो, इमा (अस्मात्)	इमत्तो, इमाओ-उ; इमाहि, इमेहि; इमाहिन्तो, इमेहितो इमासुन्तो, इमेसुन्तो, (एभ्यः)
६	चतुर्थी वत् (अस्य)	चतुर्थी वत् (एषाम्)
७	इमंसि,, इमास्सिं, इमम्मि, इह, अस्सिं (अस्मिन्)	इमेसु, इमेसुं; एसु, एसुं (एषु)

नपुंसक लिंग 'इम' (इदम्)

१–२	इणं, इणमो, इदं (इदम्)	इमाणि, इमाइं, इमाइँ
	शेष पुंलिङ्ग वत्	(इमानि)

पुंलिंग 'एअ' (एतद्) शब्द

वि	एकवचन	बहुवचन
१	एस, एसो, एसे, इणं, इणमो (एषः)	एए (एते)
२	एअं (एतम्)	एए, एआ (एतान्)

३	एएण, एएणं, एइणा, (एतेन)	एएहि, एएहिं, एएहिँ (एतैः)
४	से, एअस्स (एतस्मै)	सिं, एएसिं, एआण, एआणं (एतेभ्यः)
५	एत्तो, एत्ताहे, एअत्तो; एअत्तो, एआओ, एआउ, एआहि, एआहिंतो, एआ, (एतस्मात्)	एआओ, एआउ, एआहिंतो एएहिन्तो-उ, एआहि एएहिं; एआसुंतो,एएसुंतो(एतेभ्यः)
६	चतुर्थी वत् (एतस्य)	चतुर्थी वत् (एतेषाम्)
७	एत्थ, अयम्मि, ईअम्मि, एअंसि, एआसिं, एआम्मि, (एतस्मिन्)	एएसु, एएसुं (एतेषु)

नपुंसक लिंग 'एअ' शब्द

१-२	एस, एअं, इणं, इणमो (एतत्) शेष पुंलिंग वत्	एआणि, एआइं, एआइँ (एतानि)

पुंलिंग 'अमु' (अस्) शब्द

१	अह, अमू, असो (असौ)	अमुणो, अमवो, अमउ; अमओ, अमू (अमी)
२	अमुं (अमुम्)	अमुणो, अमू (अमून्)

३ से षष्ठी तक 'भाणु' उकारान्त वत्

७	अयम्मि, इअम्मि, अमुम्मि (अमुष्मिन्)	अमूसु, अमूसुं (अमीषु)

नपुंसक लिंग 'अमु'

१-२	अह, अमुं (अदः) शेष पुंलिंग वत्	अमूइं, अमूइँ, अमूणि (अमूनि)

स्त्रीलिंग सर्वनाम के रूपाख्यान

'ता' (तद्)

वि०	एकवचन	बहुवचन
१	सा (सा)	तीआ-उ-ओ; ती, ताउ-ओ, ता (ताः)
२	तं, णं (ताम्)	तीउ, तीओ, ती (ताः)
३	तीअ, तीआ, तीइ, तीए; ताअ, ताइ, ताए (तया)	ताहि-हिं-हिं; ताहि-हिं-हिं (ताभिः)
४–६	से, तास, तिस्सा, तीसे, तीअ, तीआ, तीइ, तीए, ताअ, ताइ-ए; (तस्याः)	तेसिं, ताण, ताणं, (ताभ्यः) (तासाम्)
५	ताअ, ताइ, ताए, ताओ, ताओ, ताउ, ताहिन्तो,	ताओ, ताउ, ताओ, ताहिंतो, तासुन्तो
७	ताहि, तीअ, तीआ, तीइ, तीए, ताअ, ताइ, ताए (तस्याम्)	तासु, तासुं (तासु)

जी-जा (यत्), की-का (किम्) के रूप 'ती-ता' वत् होते हैं।

'इमा-इमी' (इदम्)

वि०	एकवचन	बहुवचन
१	इमीआ, इमा, इमी (इयम्)	इमीआ, इमीउ, इमीओ, इमी, इमाओ इमाउ, (इमाः)
३	इमीअ, इमीआ, इमीइ, इमीए, इमाअ, इमाइ, इमाए, (अनया)	इमीहि-हिं-हिं; इमाहि-हिं-हिं; आहि, आहिं, आहिं; (आभिः)

४–६	से, इमीअ, इमीआ, इमीइ ए, इमाअ, इमाइ, इमाए, (अस्यै; अस्याः)	इमीण, इमीणं; इमाण, इमाणं, (आभ्यः, आसाम्)

शेष ती-ता वत्

'एआ, एई' (एतत्-एषा)

१	एसा, एस, (एषा) इणं, इणमो	एईआ, एईउ, एईओ, एई, एआउ, एआओ, एआ (एताः)
४–६	से, एईअ, एईआ, एईइ-ए; एआअ, एआइ, एआए (एतस्यै, एतस्याः)	सिं, एइण, एइणं, एआण, एआणं, एताभ्यः, एताणाम्

शेष ती-ता वत्

अमु (अदस्)

१	अमु (असौ)	अमुउ, अमुओ, अमू (अमूः)

शेष उकारान्त स्त्रीलिंग 'धेणु' वत्

'तुम' (युष्मद्) शब्द

वि०	एकवचन	बहुवचन
१	तं, तुं, तुमं (त्वं)	भे, तुब्भे, तुज्झ, तुम्ह (यूयम्)
२	तं, तुं, तुमं (त्वाम्)	भे, तुब्भे, तुज्झ, तुम्ह, वो (युष्मान्, वः)
३	भे, तइ, तए, तुमइ, तुमे (त्वया)	भें, तुब्भेहिं, (युष्माभिः)
४–६	तइ, तुमे, तुम्हं, तुह, तुहं, ते, (तुभ्यम्; तव, ते)	भे, तुब्भ, तुहाण-णं, तुमाण-णं; वो, (युष्मभ्यम्, युष्माकम्, वः)

५	तुब्भ, तुब्भा, तहिंतो, तुवा, तुमा, तुब्भाउ (त्वत्)	तुब्भत्तो, तुब्भाओ, तुब्भाउ, तुब्भेहि, तुब्भेहिंतो (युष्मत)
७	तइ, तए, तुमए, तुमे तुम्मि, तुमम्मि, तुहम्मि (त्वयि)	तुमसु, तुमेसु, तुब्भेसु, (युष्मासु)

'अहं' (अस्मद्) शब्द

१	म्मि, हं, अहं (अहम्)	अम्हे, अम्ह, मो, वयं (वयम्)
२	णं, मं, ममं (माम्)	अम्हे, अम्ह, णे (अस्मान, नः)
३	मइ, मए, मयाइ, मे (मया)	अम्हे, अम्ह, अम्हेहि, अम्हाहि (अस्माभिः)
४-६	मज्झ, मज्झं, मम, मइ, अम्हं (मह्यम् ; मे, मम)	अम्हाण, मज्झाण, अम्हे, मज्झ, अम्हे, णे, णो (अस्मभ्यम् ; अस्माकम्, नः)
५	ममाओ, मज्झत्तो, मज्झा, मज्झाहि, मइत्तो (मत)	अम्हतो, अम्हाहि, अम्हेसुंतो ममेहि (अस्मत्)
७	मइ मए, ममाइ (मयि)	अम्हसु, अम्हेसुं, मज्झसु, मज्झेसुं (अस्मासु)

संख्या वाचक शब्द

दु (द्वि) के तीनों ही लिंग के बहुवचन के रूप०

१	दुवे, दोण्णि, दुण्णि, वेण्णि, विण्णि, दो, वे,
२	" " " " " " "
३	दोहि, दोहिं, दोहिँ, वेहि, वेहिं, वेहिँ,
४-६	दोण्ह, दोण्हं, दुण्ह-हं, विण्ह-हं
५	दुत्तो, दोओ, दोउ, दोहिन्तो, दोसुन्तो,

७ दोसु-सुं, वेसु-सुं,

ति (त्रि) के तीनो ही लिंग के बहुवचन के रूप०

१-२ तिण्णि

४-६ तिण्ह-तिण्हं

शेष इकारान्त (इसि) वत्

चउ (चतुर) के तीनो ही लिंग के बहुवचन के रूप०

१-२ चत्तारो, चउरो, चत्तारि,

३ चउहि-हिं-हिँ, चऊहि-हिं-हिँ,

४-६ चउण्ह-हं,

शेष उकारान्त (भाणु) वत्

पंच (पञ्च) के तीनो ही लिंग के बहुवचन के रूप०

१-२ पंच

३ पंचहि हिं-हिँ, पंचेहि-हिं-हिँ,

४-६ पंचण्ह-ण्हं

वर्तमान काल 'हस्' धातु

पु०	एकवचन	बहुवचन
१	हसमि, हसामि, हसेमि, हसेज्ज, हसेज्जा, (हसामि)	हसमो, हसामो, हसिमो हसेमो; हसेज्ज, हसेज्जा, (हसामः)
२	हससि, हसेसि, हससे, हसेसे, हसेज्ज, हसेज्जा (हससि)	हसइत्था, हसेइत्था, हसह, हसेह, हसेज्ज, हसेज्जा, (हसथ)
३	हसइ, हसेइ, हसए, हसेए, हसेज्ज, हसेज्जा (हसति)	हसंति, हसेंति, हसंते, हसेन्ते, हसइरे, हसेइरे, हसेज्ज, हसेज्जा (हसंति)

नोट—प्रथम पुरुष बहुवचन में 'मु' और 'म' प्रत्यय भी लगाये जाते हैं। इसके रूप 'मो' प्रत्यय की तरह बनाये जाते हैं। जैसे—हसमु, हसामु, हसम, हसाम, आदि।

वर्तमान काल स्वरान्त धातु

हो (भू)

A. प्रकरण के प्रारम्भ में कहे अनुसार विकल्प से 'अ' लगा कर रूप बनाये जाते हैं। तब हस् वत् रूप होते हैं। जैसे—होअमि, होअसि, होअइ, इत्यादि।

B. जब अ नहीं लगाते हैं तो निम्न प्रकार रूप बनते हैं।

पु०	एकवचन	बहुवचन
१	होमि	होमो, होमु, होम
२	होसि	होइत्था, होह
३	होइ	होंति, होन्ते, होइरे०

भूतकाल 'हस्' धातु के रूप (व्यञ्जनांत)

हस् + ईअ=हसीअ

१-२-३ पुरुष के एकवचन और बहुवचन में व्यञ्जनांत धातुओं के भूतकाल के रूप उपरोक्त प्रकार होता है।

भूतकाल 'हो' (भू) स्वरांत धातु के रूप

हो + सी=होसी, होअसी,
हो + ही=होही, होअही,
हो + हीअ=होहीअ, होअहीअ

१-२-३ पु. के ए. व. और ब. व. में स्वरान्त धातुओं के भूतकाल के रूप इसी प्रकार होते हैं।

भविष्य काल 'हो' (भू) स्वरान्त धातुओं के रूप

२	हसिहिसि, हसेहिसि, हसिहिसे हसेहिसे, हसेज्जा, हसेज्जा	हसिहित्था, हसेइत्था, हसिहिह, हसेहिह, हसेज्ज, हसेज्जा
३	हसिहिइ, हसेहिइ, हसिहिए, हसेहिए, हसेज्ज, हसेज्जा,	हसिहिंति, हसेहिंति, हसिहिंते, हसेहिंते, हसिहिइरे, हसेहिइरे, हसेज्ज, हसेज्जा०

भविष्य काल 'हो' (भू) स्वरान्त धातु के रूप

उल्लिखित सूचनानुसार हो धातु के 'हो' और 'होअ' ऐसे दो अङ्ग होंगे। दोनों को हस् धातु की तरह प्रत्यय लगाकर सब रूप बना लेने चाहिये। जैसे—'हो' अङ्ग को 'मि' प्रत्यय लगाते निम्न लिखित रूप बनते हैं:—

होस्सं होएस्सं, होइस्सं; होस्सामि, होहामि, होहिमि,
होएस्सामि, होएहामि, होएहिमि,
होइस्सामि, होइहामि, होइहिमि,

इसी प्रकार 'हो' और 'होअ' अङ्ग को तीनों पुरुषों के ए. व. तथा ब. व. के प्रत्यय लगाकर बना लें।

आज्ञार्थ और विध्यर्थ

हस् व्यञ्जनांत धातु के रूप

पु०	एकवचन	बहुवचन
१	हसमु, हसामु, हसिमु, हसेमु०	हसमो, हसामो हसिमो, हसेमो०
२	हससु, हसेसु, हसेज्जसु, हसेज्जहि, हसेज्जे, हस०	हसह, हसेह,

३	हसउ, हसेउ०	हसन्तु, हसेन्तु०

'हो' स्वरान्त धातु के रूप

१	होमु	होमो
२	होसु, होहि	होह
३	होउ	होन्तु

तदुपरान्त 'हो' धातु को 'अ' प्रत्यय लगाकर 'होअ' अङ्ग के रूप हस् धातु वत् बना लें। जैसे—होअमु, होआमु होमु, होएमु, इत्यादि।

क्रियातिपत्त्यर्थ

हस् व्यञ्जनांत धातु के रूप

पु-१-२-३ के ए. व. और बहुवचन	हसन्तो, हसमाणो, हसेज्ज, हसेज्जा

हो स्वरान्त धातु के रूप

" "	होन्तो, होमाणो, होज्ज, होज्जा

कृदन्त

'हस्' धातु का वर्तमान-कृदन्त

पु० हसन्त, हसमाण, हसेन्त, हसेमाण

(पुल्लिंग के रूप अकारान्त 'वीर' वत् तथा नपुंसक के अकारान्त 'कुल' वत् होगा।)

स्त्री० हसेन्ती, हसेन्ता, हसई, हसेई, हसमाणी, हसमाणा हसेमाणा, हसेमाणी।

(आकारान्त के रूप 'माला' वत् और ईकारान्त के 'गति' वत् होगा।)

स्वरान्त 'हो' धातु का

पुं० होंत, होमाणा, होएन्त, होअन्त, होएमाण, होअमाण, (पुल्लिंग के रूप अकारान्त वीर वत, नपुंसक के 'कुल' वत्)

स्त्री० होन्ती, होन्ता, होएन्ती, होएन्ता, होअन्ती, होअन्ता, होमाणी, होमाणा, होअमाणी, होअमाणा, होएमाणी, होए-माणा, होअई, होएई, होई।

(आकारान्त के रूप 'माला' वत् और इकारान्त के 'गति' वत् होंगे)

भूत कृदन्त

भूत कृदन्त में धातु को 'अ' और 'त' प्रत्यय लगते हैं। प्रत्यय के पहिले 'अ' हो तो उसका 'इ' होता है। जैसे—हस्+अ=हस=हसिअ और हसित हू का हू+अ=हूअ, हूइअ और हूइत; तथा हूअ-हूत।

हेत्वर्थ कृदन्त

धातु के अङ्ग को तुम् प्रत्यय लगाने से हेत्वर्थ कृदन्त बनता है। 'तुम्' के पहिले 'अ' हो तो उसका 'इ' या 'ए' होता है। जैसे—हसितुं, हसेतुं, हसिउं, हसेउं,

सम्बन्धक भूत कृदन्त

धातु के अङ्ग को तुं, अ, तूण और तूणं प्रत्यय लगाने से संबंधक भूत कृदन्त बनता है। प्रत्यय के पहिले अ हो तो उसका इ होता है। जैसे—हसितुं, हसिअ, हसितुण, हसितुणं।

३ हसउ, हसेउ० हसन्तु, हसेन्तु०

'हो' स्वरान्त धातु के रूप

१ होमु होमो
२ होसु, होहि होह
३ होउ होन्तु

तदुपरान्त 'हो' धातु को 'अ' प्रत्यय लगाकर 'होअ' अंग के रूप हस् धातु वत् बना लें। जैसे—होअमु, होआमु होमु, होएमु, इत्यादि।

क्रियातिपत्त्यर्थ

हस् व्यञ्जनांत धातु के रूप

पु-१-२-३ के ए. व. और बहुवचन — हसन्तो, हसमाणो, हसेज्ज, हसेज्जा

हो स्वरान्त धातु के रूप

" " — होन्तो, होमाणो, होज्ज, होज्जा

कृदन्त

'हस्' धातु का वर्तमान-कृदन्त

पु० हसन्त, हसमाण, हसेन्त, हसेमाण

(पुल्लिंग के रूप अकारान्त 'वीर' वत् तथा नपुंसक के अकारान्त 'कुल' वत् होगा।)

स्त्री० हसेन्ती, हसेन्ता, हसई, हसेई, हसमाणी, हसमाणा हसेमाणा, हसेमाणी।

(आकारान्त के रूप 'माला' वत् और ईकारान्त के 'गति' वत् होगा।)

स्वरान्त 'हो' धातु का

पुं० होंत, होमाणा, होएन्त, होअन्त, होएमाण, होअमाण, (पुल्लिंग के रूप अकारान्त वीर वत, नपुंसक के 'कुल' वत्)

स्त्री० होन्ती, होन्ता, होएन्ती, होएन्ता, होअन्ती, होअन्ता, होमाणी, होमाणा, होअमाणी, होअमाणा, होएमाणी, होए-माणा, होअई, होएई, होई।

(आकारान्त के रूप 'माला' वत् और इकारान्त के 'गति' वत् होंगे)

भूत कृदन्त

भूत कृदन्त में धातु को 'अ' और 'त' प्रत्यय लगते हैं। प्रत्यय के पहिले 'अ' हो तो उसका 'इ' होता है। जैसे—हस् + अ = हस = हसिअ और हसित हू का हू + अ = हूअ, हूइअ और हूइत; तथा हूअ-हूत।

हेत्वर्थ कृदन्त

धातु के अङ्ग को तुम् प्रत्यय लगाने से हेत्वर्थ कृदन्त बनता है। 'तुम्' के पहिले 'अ' हो तो उसका 'इ' या 'ए' होता है। जैसे—हसितुं, हसेतुं, हसिउं, हसेउं,

सम्बन्धक भूत कृदन्त

धातु के अङ्ग को तुं, अ, तूण और तूणं प्रत्यय लगाने से संबंधक भूत कृदन्त बनता है। प्रत्यय के पहिले अ हो तो उसका इ होता है। जैसे—हसितुं, हसिअ, हसितुण, हसितुणं।

प्रेरक भेद—कर्तरि प्रयोग

१ मूल धातु को अ, ए, आव और आवे प्रत्यय लगाने से प्रेरक अङ्ग तैयार होता है। जैसे—कर् + अ = कार, कर् + ए कारे, कर् + आव = कराव, कर् + आवे = करावे।

२ मूल धातु के उपान्त्य इ का प्रायः ए और उ का प्रायः ओ होता है। जैसे—लिह् का लेह और दुह् का दोह।

३ उपान्त्य दीर्घ स्वर वाले धातुओं को उपरोक्त प्रेरक प्रत्ययों के उपरान्त 'अवि' प्रत्यय भी लगता है। जैसे—चूस + अवि = चूसवि, चूस् + अ = चूस, चूसे, चूसाव, चूसावे।

४ प्रेरक प्रत्यय अ और ए लगते समय धातु के उपान्त्य अ का आ होता है। जैसे—खम् + अ = खाम, कर् + अ = कार।

५ भम् धातु का प्रेरक अङ्ग 'भमाड' भी होता है। अर्थात् भम् धातु के अन्य प्रेरक प्रत्ययों के अतिरिक्त 'आड' प्रत्यय भी लगता है।

६ कितनेक प्रयोगों से प्रेरणा सूचक 'अवे' प्रयत्य भी लगता है। अवे प्रत्यय लगाने पर उपान्त्य अ का आ होता है।

हस् धातु के प्रेरक रूप

वर्तमान काल

प्रेरकअंग	पु०	एकवचन	बहुवचन
हास—	१	हासमि, हासामि, हासेमि	हासमो, हासामो, हासिमो, हासेमो
हासे—	१	हासेमि	हासेमो

हसाव— १ हसावमि, हसावामि, हसावेमि, — हसावमो, हसावामो हसाविमो, हसावेमो
हसावे— १ हसावेमि — हसावेमो

इसी प्रकार प्र० पु० बहुवचन के अन्य प्रत्यय तथा दूसरे तीसरे पु० के सब प्रत्यय लगाकर उपर मुजब सब रूप बना लें। सब पु० सब वचन में हासेज्ज, हासेज्जा; हसावेज्ज, हसावेज्जा; होते हैं।

प्रेरक अंग बनाकर उसको भूतकाल और भविष्य काल के प्रत्यय लगाने से प्रेरक भूतकाल और प्रेरक भविष्य काल के रूप बनते हैं।

भावे प्रयोग और कर्मणि प्रयोग

अकर्मक धातुओं का प्रयोग 'भावे' प्रयोग कहलाता है। और सकर्मक धातुओं का प्रयोग 'कर्मणि' प्रयोग कहलाता है। अर्थात् जो मुख्यता क्रिया को ही प्रयोग बतावे वह 'भावे' प्रयोग और जो मुख्यतः कर्म को ही बतावे वह 'कर्मणि' प्रयोग कहलाता है।

२ धातु का भाव प्रधान या कर्म प्रधान अङ्ग बनाने के लिए धातु को ईअ, ईय और इज्ज लगाया जाता है।

२ उक्त प्रत्यय वर्तमान काल, विध्यर्थ, आज्ञार्थ और ह्यस्तन भूत काल में ही लगाये जाते हैं। भविष्यकाल और क्रियातिपत्ति आदि में कर्तरि प्रयोग वत् समझना चाहिए।

उपरोक्त प्रत्यय लगाकर धातु के भावे अथवा कर्मणि प्रयोग बनाने पर पु० बोधक प्रत्यय लगाकर रूप बना लें।

भाव सूचक अङ्ग–बीह धातु के बीहीअ, बिहिज्ज,
खा ,, ,, खाईअ, खाइज्ज,
कर्म सूचक अङ्ग–पा ,, ,, पाईअ, पाइज्ज,
दा ,, ,, दाईअ, दाइज्ज,
पढ ,, ,, पढीअ, पढिज्ज,

उक्त प्रकार धातु के भाव वाची और कर्मवाची अङ्ग तैयार करके सब काल के पु० बोधक प्रत्यय लगाकर रूप बनाये जाते हैं। जैसे—वर्तमान काल, प्र० पु० एकवचन—बीहीअइ, बीहिज्जइ इत्यादि।

सब पु० और सब वचन में—बीहीज्ज, बीहीएज्जा, बीहीअज्जेज्ज, बीहिज्जेज्जा.

तद्धित

कितनेक तद्धित प्रत्ययों की समझ:—

१ तद्धित में सम्बन्ध सूचक अर्थ में नाम को 'केर' प्रत्यय लगता है।

जैसे—अम्ह + केर = अम्हकेरं, तुम्ह + केरं = तुम्हकेरं, राय + केरं = रायकेरं०

२ आधार सूचक अर्थ में नाम को 'इल्ल' और 'उल्ल' प्रत्यय लगते हैं।

जैसे—गाम + इल्ल = गामिल्लं, घर + इल्ल = घरिल्लं,
अप्प + उल्ल = अप्पुल्लं, नयर–उल्ल = नयरुल्लं,

३ उपमा सूचक अर्थ में 'व्व' प्रत्यय का प्रयोग होता है।

जैसे—महुरव्व (मथुरावत्त) पाडलिपुत्त पसाया।

४ भाव वाचक (पना) अर्थ से 'इमा' 'त्त' 'त्तण' प्रत्यय लगते हैं।

जैसे— पीण + इमा = पीणिमा , देव + त्तं = देवत्तं , बाला + त्तणं = बालत्तणं ।

५ 'बार' अर्थ बताने के लिये तद्धित में 'हुत्तं' और 'खुत्तो' प्रत्यय लगते हैं।

जैसे—एग + हुत्तं = एगहुत्तं , ति + हुत्तं = तिहुत्तं , ति + खुत्तो = तिखुत्तो ।

६ 'वाला' अर्थ सूचक के लिये भाव वाचक नाम को "आल, आलु, इत्त, इर, इल्ल, उल्ल, मण, मंत और वंत" प्रत्यय लगते हैं।

जैसे—रस + आल = रसालो, जडा + आल = जडाओ, दया + आलु = दयालू, लज्जा + आलु = लज्जालू, रेहा+इर = रहीरो, गव्व + इर = गव्विरो, मान+इत्त = माणइत्तो, सोमा+ इल्ल = सोभिल्लो, सद + उल्ल = सदुलो, धी+मंत = धीमन्तो, भत्ति+ वंत = भत्तिवन्तो, धण + मण = धणमणो, सोहा + मण = सोहामणो ।

७ तद्धित में 'त्तो' पंचमी विभक्ति का अर्थ सूचक है।

जैसे—सव्व + त्तो = सव्वत्तो, क + त्तो = कत्तो, त + त्तो = तत्तो ।

८ तद्धित में 'हि', 'ह' और 'त्थ' प्रत्यय सप्तमी विभक्ति के अर्थ सूचक है।

जैसे—जहि, जइ, जत्थ; तहिं, तइ, तत्थ, कहि, कइ, कत्थ,

६ तद्धित में स्वार्थ सूचन के लिये 'अ' 'इल्ल' और 'उल्ल' प्रत्यय का प्रयोग विकल्प से होता है।

जैसे—चंद + अ = चंदओ, पल्लव + इल्ल = पल्लविल्लो, पल्लवो, हत्थ + उल्ल = हत्थुल्लो, हत्थो,

परिशिष्ट

(प्राकृत संयुक्ताक्षरों की तालिका)

१ क्क:—संस्कृत के त्क, क्त, क्य, क्र, र्क, क्ल, ल्क और क्व के स्थान पर प्राकृत में 'क्क' का प्रयोग होता है। जैसे—उत्कण्ठा का उक्कंठा, मुक्त = मुक्क, चाणक्य = चाणक्क, शक्र = सक्क, अर्क = अक्क, उल्का = उक्का, विक्लव = विक्कव और पक्व का पक्क।

२ क्ख:—संस्कृत के त्ख, त्क्य, क्ष, क्ष्ण, (क्ष्य), ष्क, स्क (स्ख), स्ख और :ख के स्थान पर प्राकृत में क्ख का प्रयोग होता है। जैसे—उत्खण्डित = उक्खडित, आख्या = अक्खा, यक्ष = जक्ख, उत्क्षिप्त = उक्खित्त, मुष्क = मुक्ख, प्रस्कन्ध = पक्खन्ध, अस्खलित = अक्खलिअ, दुःख = दुक्ख.

३ ग्ग:—संस्कृत के ङ्ग, द्ग, ग्न, ग्म, ग्य, ग्र, र्ग, और ल्ग के स्थान पर प्राकृत में 'ग्ग' होता है। जैसे—खड्ग = खग्ग, मुद्ग = मुग्ग, नग्न = नग्ग, युग्म = जुग्ग, योग्य = जोग्ग, समग्र = समग्ग, मार्ग = मग्ग, वल्गित = वग्गिअ.

४ ग्घ:—संस्कृत के द्घ, घ्न, घ्र, और र्घ के स्थान पर ग्घ होता है। जैसे—उद्घाटित = उग्घाडिअ, विघ्न = विग्घ, शीघ्र = सिग्घ, और अर्घ का अग्घ.

५ क्खः-संस्कृत के क्ष के स्थान पर प्राकृत में क्ख होता है। जैसे—सङ्क्षोभ का सङ्खोह होता है।

६ च्चः-संस्कृत के च्य, त्य, र्च के स्थान पर प्राकृत में च्च होता है। जैसे—अच्युत = अच्चुअ, नित्य = णिच्च और चर्चरिका = चच्चरिआ।

७ च्छः-संस्कृत में थ्य, र्छ, छ्र, क्ष, त्स, क्ष्म, त्स, त्स्य, प्स और श्च के स्थान पर प्राकृत में च्छ होता है। जैसे—मिथ्या का मिच्छा, मूर्च्छा = मुच्छा, कृच्छ्र = किच्छ, अक्षि = अच्छि, उत्क्षिप्त = उच्छित्त, लक्ष्मी = लच्छी, वत्स = वच्छ, मत्स्य = मच्छ, लिप्सा = लिच्छा, और आश्चर्य का अच्छेर होता है।

८ ज्जः-संस्कृत के ब्ज, ज्ञ, ज्र, र्ज, ज्व, द्य, र्य, अने य्य के स्थान पर प्राकृत में 'ज्ज' का प्रयोग होता है। जैसे—कुब्ज = कुज्ज = खुज्ज, सर्वज्ञ = सव्वज्ज, वज्र = वज्ज, गर्जित = गज्जिअ, प्रज्वलित = पज्जलिअ, विद्या = विज्जा, कार्य = कज्ज, और शय्या का सेज्जा होता है।

विप्लव = विप्पव, रुक्म = रुप्प, उत्फुल्ल = उप्फुल्ल, निष्फल = णिप्फल, स्फुट = फुड, पुष्प = पुप्फ, शरीर स्पर्श = सरीरप्फस।

१५ व्व-ब्भः–संस्कृत के द्व, र्व और व्र के स्थान पर प्राकृत में 'व्व' तथा ग्भ, ह्व, भ्य, भ्र, और र्भ के स्थान पर 'ब्भ' का प्रयोग होता है। जैसे—उद्वन्ध्य = उव्वंधिय, वर्वर = वव्वर, अब्राह्मण्य = अव्वम्हणं, प्राग्भार = पब्भार, सद्भाव = सब्भाव, अभ्यर्थना = अब्भत्थणा, अभ्र = अब्भ और गर्भ का गब्भ होता है।

१६ म्म-म्हः–संस्कृत के ङ्म, ण्म, न्म, म्य, र्म, ल्म, के स्थान पर प्राकृत में 'म्म' तथा ष्म, द्म, स्म, ह्म के स्थान पर 'म्ह' का प्रयोग होता है। जैसे—दिङ्मुख = दिम्मुह, षण्मुख = छम्मुह, जन्म = जम्म, सौम्य = सोम्म, वर्म्मन् = वम्म, गुल्म = गुम्म; तथा ग्रीष्म = गिम्ह, पद्मन = पम्ह, विस्मय = विम्हअ, ब्राह्मण का बम्हण.

१७ रिः–संस्कृत के दृ और र्य का प्राकृत में 'रि' होता है। जैसे—तादृश = तारिस, चौर्य = चोरिअ,

१८ ल्ल-ल्हः–संस्कृत के ल्य, र्ल, र्व, का (क्वचित) 'ल्ल' और ह्ल का प्राकृत में 'ल्ह' होता है। जैसे—शल्य = सल्ल, निर्लज्ज = णिल्लज्ज, पर्याण = पल्लाण; कह्लार = कल्हार.

१९ व्वः–संस्कृत के व्य (व्र) और र्व का प्राकृत में 'व्व' होता है। जैसे—काव्य = कव्व और पूर्व = पुव्व.

सूत्र-विभाग

वीर-वाणी

धर्म

(१) धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ॥

(२) धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तमं ।

(३) धम्मं चरसु दुच्चरं ।

(४) धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ ।

(५) चइज्ज देहं न हु धम्मसासणं ।

(६) सययं मूढे धम्मं नाभिजाणइ ।

विनय

(१) धम्मस्स विणओ मूलं ।

(२) विणए ठविज्ज अप्पाणं, इच्छन्तो हियमप्पणो ।

(३) विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणीयस्स य ।

(४) न यावि मुक्खो गुरुहीलणाए ।

(५) जस्संतिए धम्मपयाइं सिक्खे, तस्संतिए वेणइयं पउंजे ।

धर्म

(१) अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म ही श्रेष्ठ मंगल है। जिसका मन हमेशा धर्म में अनुरक्त रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

(२) धर्म संसार-सागर में द्वीप के समान है, आधार रूप है, गति देने वाला है, (अथवा दुःख से छूटने का उपाय है।) और उत्तम शरणभूत है।

(३) दुष्कर धर्म का आचरण करो।

(४) शुद्ध हृदय में ही धर्म स्थिर रहता है।

(५) शरीर भले ही छूट जाय परन्तु धर्मशासन का त्याग न करो।

(६) अज्ञानी मनुष्य धर्म को कदापि नहीं जान सकता है।

विनय

(१) धर्म का मूल विनय है।

(२) जो अपनी आत्मा का कल्याण चाहता है उसे अपनी आत्मा को विनय में स्थापित करना चाहिए।

(३) अविनीत को विपत्ति और विनीत को सम्पत्ति प्राप्त होती है।

(४) गुरु की निन्दा या अवज्ञा करने से मोक्ष नहीं मिल सकता है।

(५) जिनके पास धर्मपद-अर्थात् सूत्र सिद्धान्त का अभ्यास करें उनके प्रति विनय का प्रयोग करना चाहिए।

मुक्तिमार्ग

(१) नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥
(२) नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ ॥

सम्यग्ज्ञान

(१) पढमं नाणं तओ दया ।
(२) जहा सुई ससुत्ता पडिया वि ण विणस्सइ ।
तहा जीवो ससुत्तो संसारे न विणस्सइ ॥

सम्यग्दर्शन

(१) सम्मत्तदंसी न करेइ पावं ।
(२) संबुज्झह, किं न बुज्झह,
संबोही खलु पेच्च दुल्लहा ।

सम्यक् चारित्र

अहिंस-सच्चं च अतेणगं च
तत्तो य बंभं अपरिग्गहं च ।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि
चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विदू ॥

मुक्तिमार्ग

(१) यथार्थ द्रष्टा जिन भगवान ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मोक्ष का मार्ग बताया है।

मुमुक्षु जीव ज्ञान से वस्तु-स्वरूप को जानता है, दर्शन से उस पर श्रद्धा करता है, चारित्र से आत्मविकार और इन्द्रियों का निग्रह करता है और तप के द्वारा आत्मा को विशुद्ध बनाता है।

सम्यग् ज्ञान

(१) प्रथम तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। बाद ही दया—चारित्र का पालन बराबर हो सकता है।

(२) जिस प्रकार सूत्र (डोरा) सहित सूई गिर पड़ने पर भी नहीं गुमती है उसी तरह सूत्र सहित (सिद्धान्त वेत्ता) जीव संसार में इधर-उधर नहीं भटकता है।

सम्यग् दर्शन

(१) सम्यग्द्रष्टा—यथार्थ तत्त्वदर्शी आत्मा पाप का उपार्जन नहीं करता।

(२) हे जीवो ! समझो। क्यों नहीं समझते ? परलोक में बोधि—सम्यक्त्व की प्राप्ति होना दुर्लभ है।

सम्यक्-चारित्र

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच महाव्रतों को ग्रहण कर बुद्धिमान् जिन भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म का आचरण करें।

अहिंसा

(१) अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो ।

(२) सव्वेसिं जीवियं पियं ।

सव्वे जीवा वि इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं ।

(३) न हणे पाणिणो पाणे ।

(४) नाइवाएज्ज कंचणं ।

(५) एयं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ कंचणं ।

सत्य

(१) तं सच्चं खु भगवं ।

(२) सच्चम्मि धिइं कुव्वहा ।

(३) सच्चं लोगम्मि सारभूयं ।

(४) अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्तिं भूएसु कप्पए ।

(५) मुसावाओ य लोगम्मि, सव्वसाहूहिं गरिहिओ ।

अविस्सासो य भूयाणं, तम्हा मोसं विवज्जए ।

अचौर्य-व्रत

(१) चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।

दन्तसोहणमित्तं पि, उग्गहं से अजाइया ॥

तं अप्पणा न गिण्हंति, नो वि गिण्हावए परं ।

अन्नं वा गिण्हमाणं पि, नाणुजाणन्ति संजया ॥

अहिंसा

(१) सब प्राणियों के प्रति संयमभाव रखना-इसे ही भगवान् ने सच्ची अहिंसा बताई है।
(२) सब प्राणियों को अपना जीवन प्रिय लगता है। सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।
(३) किसी भी प्राणी के प्राणों का वध नहीं करना चाहिए।
(४) किसी भी जीव की हिंसा न करो।
(५) किसी की हिंसा न करना ही ज्ञान का सार है।

सत्य

(१) सत्य ही भगवान् है।

(२) सत्य में स्थिर रहो—अर्थात् कष्ट पड़ने पर भी सत्य का परित्याग न करो।

(३) सत्य ही संसार में सारभूत है।

(४) अन्तरात्मा से सत्य का अन्वेषण करना चाहिए और प्राणियों पर मित्रता का भाव रखना चाहिए।

(५) सब सन्तपुरुषों ने मृषावाद की निन्दा की है। झूठ बोलने वाला सब का अविश्वास-पात्र होता है अतः मृषावाद का त्याग करना चाहिए।

अचौर्य-व्रत

(१) कोई भी वस्तु चाहे वह सजीव हो या निर्जीव हो, अल्प हो या बहुत हो, यहाँ तक कि दाँत खोतरने की सलाई भी सन्तपुरुष, स्वामी की आज्ञा लिए बिना स्वयं नहीं लेते हैं, दूसरों से नहीं लिवाते हैं और इस प्रकार लेने वाले को ठीक भी नहीं समझते हैं।

ब्रह्मचर्य

(१) तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं ।

(२) अबंभचरियं घोरं, पमायं दुरहिट्ठियं ।

(३) रसा पगामं न निसेवियव्वा ।
पायं रसा दित्तिकरा नराणं ।

(४) कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं ।

अपरिग्रह-व्रत

(१) मुच्छा परिग्गहो वुत्तो ।

(२) ममत्तभावं न कहिं पि कुज्जा ।

(३) ममत्तबंधं च महाभयावहं ।

(४) नेहपासा भयंकरा ।

तप

(१) तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं ।

(२) भवकोडिसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ ।

(३) संजमं निहुओ चर ।

दुर्लभ-जीवन

(१) चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा संजमम्मि य वीरियं ।

(२) दुल्लहे खलु माणुसे भवे ।

(३) उत्तमधम्मसुई हु दुल्लहा ।

ब्रह्मचर्य

(१) सब प्रकार के तपों में ब्रह्मचर्य उत्तम तप है।

(२) अब्रह्मचर्य-मैथुन भयंकर है, प्रमाद पैदा करने वाला है और जीवन को अप्रतिष्ठित बनाने वाला है।

(३) रसों का अधिक सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि ये मनुष्यों को प्रायः मदोन्मत्त बनाते हैं।

(४) कामेच्छा पर विजय प्राप्त करो, इससे दुःख पर विजय प्राप्त कर सकोगे।

अपरिग्रह-व्रत

(१) जिनदेव ने मूर्छा—आसक्ति को परिग्रह कहा है।

(२) किसी भी वस्तु में ममत्व भाव नहीं रखना चाहिए।

(३) ममता का बन्धन अत्यन्त भयंकर है।

(४) प्रेम-पाश भयंकर होता है।

तप

१ जिस चारित्र में तप की प्रधानता है वही चारित्र उत्तम है।

२ क्रोड़ों भवों में संचित किये हुए कर्म तपश्चर्या से नष्ट हो जाते हैं।

३ एकाग्र-निश्चल होकर तपः संयम का पालन करो।

दुर्लभ जीवन

१ जीवों को इन चार उत्तम अंगों की प्राप्ति होना बड़ा कठिन है:— (१) मनुष्यत्व (२) धर्मश्रवण (३) धर्मश्रद्धा और (४) संयम में पराक्रम।

२ मनुष्यभव सचमुच बड़ा दुर्लभ है।

३ उत्तम धर्म का श्रवण करना भी दुर्लभ है।

(४) सद्धा परम दुल्लहा ।

(५) सुइं च लद्धुं सध्धं च वीरियं पुण दुल्लहं ।

अप्रमाद

(१) समयं गोयम ! मा पमायए ।

(२) उट्ठिए, नो पमायए ।

(३) सव्वओ पमत्तस्स भयं ।

(४) असंखयं जीवियं मा पमायए,
जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं ।

(५) धीरे मुहुत्तमवि नो पमायए ।
वओ अच्चेइ जोव्वणं च जीवियं ।

कर्त्तव्य-निर्देश

(१) खंति सेविज्ज पण्डिए ।

(२) जिइन्दिए जो सहइ स पुज्जो ।

(३) नो लोगस्स एसणं चरे ।

(४) नो निण्हवेज्ज वीरियं ।

(५) खुड्डेहिं सह संसग्गं हासं कीडं च वज्जए ।

(६) पिट्ठिमंसं न खाइज्जा, मायामोसं विवज्जए ।

(७) काले कालं समायरे ।

(८) जं सेयं तं समायरे ।

(९) वसे गुरुकुले णिच्चं ।

४ धर्मश्रद्धा अत्यन्त दुर्लभ है।

५ धर्म-श्रवण और धर्म-श्रद्धा प्राप्त होने पर भी धर्म में पराक्रम करना अत्यन्त दुर्लभ है।

अप्रमाद

१ हे गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद न करो।

२ उठो, प्रमाद न करो।

३ प्रमादी पुरुष को चारों तरफ से भय रहता है।

४ जीवन असंस्कृत (नहीं साँधा जा सकने वाला—क्षण-भंगुर) है अतः प्रमाद न करो। जब वृद्धावस्था आती है तब कोई रक्षण करने वाला नहीं होता है।

५ धीर पुरुष मुहूर्त्त मात्र का भी प्रमाद न करें क्योंकि आयुष्य कम होता जा रहा है तथा यौवन और जीवन बीतता जा रहा है।

कर्त्तव्य-निर्देश

१ बुद्धिमान् पुरुष क्षमा का सेवन करे।

२ जितेन्द्रिय बन कर जो सहन करता है वह पूज्य है।

३ लोक-सम्बन्धी एषणा नहीं करना चाहिए। अर्थात् लौकिक लाभ की इच्छा नहीं रखनी चाहिए।

४ अपनी शक्ति का अपव्यय न करो।

५ क्षुद्र पुरुषों का संसर्ग नहीं करना चाहिए तथा उनके साथ हास्य-क्रीड़ा भी नहीं करनी चाहिए।

६ किसी की चुगली या परोक्ष में निन्दा न करो और कूड-कपट का त्याग करो।

७ प्रत्येक कार्य यथासमय करना चाहिए।

८ जो कल्याणकारी है उसका आचरण करो।

९ निरन्तर गुरुकुल में निवास करना चाहिए।

सूत्र-विभाग

गरुयत्तं-लहुयत्तं

प्र०:–कहं णं भंते ! जीवा गरुयत्तं हव्वं आगच्छंति ?

उ०:–गोयमा ! पाणाइवाएणं, मुसावाएणं, अदिण्णा दाणेणं, मेहुणेणं, परिग्गहेणं, कोह-माण-माया-लोभ-पेज्ज-दोस-कलह-अब्भक्खाण-पेसुन्न-अरति–रति-परपरिवाय-मायामोस--मिच्छादंसणसल्लेणं, एवं खलु गोयमा ! जीवा गरुयत्तं हव्वं आगच्छन्ति ।

प्र०:–कहं णं भंते ! जीवा लहुयत्तं हव्वं आगच्छंति ?

उ०:–गोयमा ! पाणाइवायवेरमणेणं जाव मिच्छादंसण-सल्लविरमणेणं एवं खलु गोयमा ! जीवा लहुयत्तं हव्वं आगच्छंति ।

एवं संसारं आउलीकरेंति, एवं परित्तीकरेंति एवं दीहीकरेंति, एवं हस्सीकरेन्ति एवं अणुपरियट्टन्ति एवं वीतिवयंति । पसत्था चत्तारि, अपसत्था चत्तारि ।

श्री भगवतीसूत्र
१ शतक; उद्देशक ६

गुरुत्व-लघुत्व

प्रश्न—हे भगवन् ! जीव किस प्रकार कर्म-भार से भारी होते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! प्राणातिपात से, मृषावाद से, अदत्तादान से, मैथुन से, परिग्रह से, क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष-कलह, अभ्याख्यान (कलङ्क) पैशुन्य (चुगली) अरति-रति-पर-परिवाद, कूट-कपटमय झूठ और मिथ्यादर्शन शल्य से जीव कर्म भार से भारी होते हैं। हे गौतम ! इस प्रकार जीव कर्मभार से भारी होते हैं।

प्रश्न—हे भगवन ! जीव किस प्रकार कर्म भार से हल्के होते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! प्राणातिपात से निवृत्त होने से यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से निवृत्त होने से। हे गौतम ! इस प्रकार जीव कर्मभार से हल्के होते हैं।

इस प्रकार संसार की वृद्धि करते हैं, संसार को सीमित करते हैं, संसारकाल बढ़ाते हैं, संसार काल कम करते हैं, संसार में परिभ्रमण करते हैं और संसार से पार हो जाते हैं। चार शुभ हैं और चार अशुभ हैं।

श्री भगवती सूत्र १ शतक; उद्देशक ९

गरुयत्तं-लहुयत्तं

प्र०:-कहं णं भंते ! जीवा गरुयत्तं हव्वं आगच्छंति ?

उ०:-गोयमा ! पाणाइवाएणं, मुसावाएणं, अदिण्णा-
दाणेणं, मेहुणेणं, परिग्गहेणं, कोह-माण-माया-लोभ
पेज्ज-दोस-कलह-अब्भक्खाण-पेसुन्न-अरति--रति-पर-
परिवाय-मायामोस--मिच्छादंसणसल्लेणं, एवं खलु
गोयमा ! जीवा गरुयत्तं हव्वं आगच्छन्ति ।

प्र०:-कहं णं भंते ! जीवा लहुयत्तं हव्वं आगच्छंति ?

उ०:-गोयमा ! पाणाइवायवेरमणेणं जाव मिच्छादंसण-
सल्लविरमणेणं एवं खलु गोयमा ! जीवा लहुयत्तं
हव्वं आगच्छंति ।

एवं संसारं आउलीकरेंति, एवं परित्तीकरेंति एवं
दीहीकरेंति, एवं ह्रस्सीकरेन्ति एवं अणुपरियट्टन्ति एवं वीति-
वयंति । पसत्था चत्तारि, अपसत्था चत्तारि ।

श्री भगवतीसूत्र
१ शतक; उद्देशक ६

गुरुत्व-लघुत्व

प्रश्न—हे भगवन् ! जीव किस प्रकार कर्म-भार से भारी होते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! प्राणातिपात से, मृषावाद से, अदत्तादान से, मैथुन से, परिग्रह से, क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष-कलह, अभ्याख्यान (कलङ्क) पैशुन्य (चुगली) अरति-रति-पर-परिवाद, कूट-कपटमय झूठ और मिथ्यादर्शन शल्य से जीव कर्म भार से भारी होते हैं। हे गौतम ! इस प्रकार जीव कर्मभार से भारी होते हैं।

प्रश्न—हे भगवन ! जीव किस प्रकार कर्म भार से हल्के होते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! प्राणातिपात से निवृत्त होने से यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से निवृत्त होने से। हे गौतम ! इस प्रकार जीव कर्मभार से हल्के होते हैं।

इस प्रकार संसार की वृद्धि करते हैं, संसार को सीमित करते हैं, संसारकाल बढ़ाते हैं, संसार काल कम करते हैं, संसार में परिभ्रमण करते हैं और संसार से पार हो जाते हैं। चार शुभ हैं और चार अशुभ हैं।

श्री भगवती सूत्र १ शतक; उद्देशक ६

पज्जुवासणा-पण्होत्तराणि

गोयमः—तहारूवं णं भंते ! समणं वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किं फला पज्जुवासणा ?

महावीरः—गोयमा ! सवणफला ।

गोयमाः—से णं भंते ! सवणे किं फले ?

महा०ः— णाणफले ।

गोयमाः—से णं भंते ! णाणे किं फले ?

महा०ः— विन्नाणफले ।

गोयमः—से णं भंते ! विन्नाणे किं फले ?

महा०ः— पच्चक्खाणफले ।

महा०ः—से णं भंते ! पच्चक्खाणे किं फले ।

गोतमः—संजमफले ?

गोयमः—से णं भंते ! संजमे किं फले ?

महा०ः— अणण्हयफले ।

गोयमः—से णं भंते ! अणण्हये किं फले ?

महा०ः— तवफले ।

गोयमः—से णं भंते ! तवे किं फले ?

महा०ः— वोदाणफले ।

गोयमः—से णं भंते वोदाणे किं फले ? ·

महा०ः— अकिरिया फले ।

पर्युपासना—प्रश्नोत्तर

गौतमः—हे पूज्य ! तथारूप श्रमण-माहन की सेवा-भक्ति करने वाले को सेवा का क्या फल प्राप्त होता है ?

महावीरः—हे गौतम ! ऐसी सेवा करने वाले को धर्मश्रवणरूप फल मिलता है।

गौतमः—हे भगवन् ! उस धर्मश्रवण का क्या फल होता है ?

महावीरः—धर्म-श्रवण से ज्ञानफल की प्राप्ति होती है।

गौतमः—हे भगवन् ! उस ज्ञान का क्या फल होता है ?

महावीरः—ज्ञान का फल विज्ञान है।

गौतमः—हे पूज्य ! विज्ञान का क्या फल होता है ?

महावीरः—विज्ञान का फल प्रत्याख्यान (त्याग) है।

गौतमः—हे भगवन् ! उस प्रत्याख्यान का क्या फल होता है ?

महावीरः—प्रत्याख्यान का फल संयम है।

गौतमः—हे भगवन् ! उस संयम का क्या फल होता है ?

महावीरः—संयम से नवीन कर्मों का आना रुक जाता है अतः जीव अनास्रवी हो जाता है।

गौतमः—हे भगवन् ! अनास्रव होने का क्या फल होता है ?

महावीरः—हे गौतम ! अनास्रवता से तप की प्राप्ति होती है।

गौतमः—हे भगवन् ! तप का क्या फल होता है ?

महावीरः—हे गौतम ! तप से कर्मों का क्षय होता है।

गौतमः—हे भगवन् ! कर्म-क्षय से क्या फल मिलता है ?

महावीरः—हे गौतम ! कर्म-क्षय होने से जीव अक्रिय होता है।

गोयमः—से णं भंते ! अकिरिया किं फले ?

महा०ः—सिद्धि पज्जवसाणफला पन्नत्ता गोयमा !

गाहा

सवणे णाणे य विन्नाणे पच्चक्खाणे य संजमे ।
अणण्हये तवे चेव वोदाणे अकिरिया सिद्धी ॥

—श्री भगवती सूत्र—
शतक २; उद्देशक ५

वीरत्थुई

हत्थीसु एरावणमाहु णाए सीहो मिगाणं सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवो निव्वाणवादीणिह नायपुत्ते ॥
ओहेसु णाए जह वीससेणे पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु ।
खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ॥
दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं सच्चेसु वा अणवज्जं वयं ति ।
तवेसु वा उत्तम बंभचेरं लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥

सूयगडं, ६, वीरत्थुई अज्झयणं

गौतमः-हे भगवन्! अक्रिय होने से क्या फल मिलता है?
महावीरः-हे गौतम! अक्रिय हो जाने से सिद्धि प्राप्त होती है।

इस प्रकार तथारूप श्रमण-माहन की पर्युपासना का अन्तिम फल सिद्धि प्राप्त करना है।

—गाथा—

सेवा से श्रवण, ज्ञान, विज्ञान, प्रत्याख्यान, संयम, अनास्रवत्व, तप, कर्म-क्षय, अक्रियत्व और सिद्धि प्राप्त होती है।

—श्री भगवती सूत्र शतक २-उद्देशक ५

वीरस्तुति

जिस प्रकार हाथियों में ऐरावत हाथी प्रसिद्ध है, मृगादि पशुओं में सिंह, नदियों में गंगा, पक्षियों में वेणुदेव गरुड़ श्रेष्ठ है इसी तरह निर्वाणवादियों में ज्ञातपुत्र भगवान महावीर श्रेष्ठतम हैं।

जिस प्रकार योद्धाओं में विश्वसेन विख्यात हैं, फूलों में जिस प्रकार कमल सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है, क्षत्रियों में वक्रदन्त श्रेष्ठ हैं इसी तरह ऋषियों में महावीर वर्धमान सर्व श्रेष्ठ हैं।

जिस प्रकार दानों में अभयदान श्रेष्ठ है, सत्य वचनों में पापरहित सत्य बोलना श्रेष्ठ है, तप में ब्रह्मचर्य सब से उत्तम है इसी तरह ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर लोक में सब से उत्तम है।

सूत्रकृताङ्ग, ६, वीरस्तुति-अध्ययन.

महप्पा-महावीरो

जयइ जगजीवजोणिवियाणओ जगगुरू जगाणंदो।
जगणाहो जगबन्धू जयइ जगप्पियामहो भयवं ॥
जयइ सुआणं पभवो तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ।
जयइ गुरू लोगाणं जयइ महप्पा महावीरो ॥
भद्दं सव्वजगुज्जोयगस्स भद्दं जिणस्स वीरस्स।
भद्दं सुरासुरनमंसियस्स भद्दं धुयरयस्स ॥

—नन्दीसूत्रम्

लोय-ट्ठिती (लोकस्थिति)

गोयमः—कइविहा णं भंते ! लोयट्ठिती पन्नता ?

महा०:—गोयमा ! अट्ठविहा लोगट्ठिती पन्नता। तंजहाः—

१ आगासपइट्ठिए वाए
२ वायपइट्ठिए उदही
३ उदहिपइट्ठिया पुढवी
४ पुढवीपइट्ठिया तसा, थावरा पाणा
५ अजीवा जीवपइट्ठिया
६ जीवा कम्मपइट्ठिया
७ अजीवा जीवसंगहिया
८ जीवा कम्मसंगहिया

महात्मा महावीर

संसार की समस्त जीवयोनियों के जानने वाले, जगद्गुरु, जगत् को आनन्द प्रदान करने वाले, जगत् के नाथ, जगद्बन्धु और जगत् के पितामह भगवान् की जय हो।

श्रुतज्ञान के मूल स्रोत की जय हो, अन्तिम तीर्थङ्कर की जय हो, त्रिलोक के गुरु की जय हो और महात्मा महावीर की जय हो।

समस्त संसार में उद्योत करने वाले का कल्याण हो, देव और असुरों के वन्दनीय का कल्याण हो और कर्मरूपी रजमैल को नष्ट करने वाले वीर जिनेश्वर का कल्याण हो।

—श्रीनन्दीसूत्र

लोकस्थिति

गौतम– हे भगवन् ! लोकस्थिति कितने प्रकार की कही गई है ?

महावीर–हे गौतम ! लोकस्थिति आठ प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है:—

(१) वायु, आकाश के आधार पर रहा हुआ है। (आकाश स्वयं प्रतिष्ठित है।)

(२) वायु के आधार पर उदधि (जल) रहा हुआ है।

(३) जल के आधार पर पृथ्वी रही हुई है।

(४) पृथ्वी के आधार पर त्रस-स्थावर प्राणी रहे हुए हैं।

(५) जीव के आश्रित (शरीरादि) अजीव रहे हुए हैं। (आधार-आधेय सम्बन्ध)

(६) जीव कर्म के आश्रित रहे हुए हैं।

(७) जीव के द्वारा संग्रहीत होने से अजीव जीवाश्रित हैं (ग्राह्य-ग्राहकसम्बन्ध)

(८) जीव कर्मों के द्वारा संग्रहीत हैं।

गोयमः—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अट्ठविहा जाव जीवा कम्मसंगहिया ?

महा०:—गोयमा ! से जहाणामए केइ पुरिसे वत्थिमाडोवेइ; वत्थिमाडोवित्ता उप्पिं सितं बंधइ, बंधइत्ता मज्झेणं गंठिं बंधइ, बंधइत्ता उवरिल्लं गंठिं मुयइ, मुइत्ता उवरिल्लं देसं वामेइ, उवरिल्लं देसं वामेत्ता उवरिल्लं देसं आउयायस्स पूरेइ, पूरित्ता उप्पिं सितं बंधइ, बंधित्ता मज्झिल्लं गंठिं मुयइ, मुइत्ता; से णूणं गोयमा ! से आउयाये वाउयायस्स उप्पिं उवरिमतले चिट्ठइ ?

गोयमः—हंता चिट्ठइ ।

महा०:—से तेणट्ठेणं जाव—'जीवा कम्मसंगहिया' से जहा वा केइ पुरिसे वत्थिं आडोवेइ, आडोवित्ता कडीए बंधइ, बंधित्ता अत्थाहमतारमपोरसियंसि उदगंसि ओगाहेज्जा । से णूणं गोयमा ! से पुरिसे तस्स आउयायस्स उवरिमतले चिट्ठइ ?

हंता चिट्ठइ ।

एवं वा अट्ठविहा लोगट्ठिई पन्नत्ता, जाव जीवा कम्मसंगहिया ।

—भगवतीसूत्र १ शतक, ६ उद्देशक

ौतम-हे भगवन्! ऐसा किस अभिप्राय से कहा जाता है कि लोकस्थिति आठ प्रकार की है यावत् जीव कर्मसंगृहीत हैं?

हावीर-गौतम! जैसे कोई पुरुष मशक को हवा से भर लेता है, मशक को हवा से भरकर ऊपर गाँठ लगाता है, गाँठ लगाकर मध्य में गाँठ बाँधता है, मध्य में गाँठ लगाकर ऊपर की गाँठ को खोल देता है, खोलकर ऊपर के भाग को खाली कर देता है, खाली करके ऊपर के भाग में पानी भर देता है, पानी भरकर ऊपर गाँठ लगा देता है, ऊपर गाँठ लगाकर मध्य की गाँठ को खोल देता है तो हे गौतम! वह पानी वायु के ऊपर रहता है या नहीं?

गौतमः-हाँ भगवान् रहता है।

महावीरः-इस अभिप्राय से कहा जाता है कि आठ प्रकार की लोकस्थित्ति है यावत् जीव कर्मसंगृहीत हैं।

—भगवतीसूत्र शतक १, उद्देशक ६

निग्गंथ-पावयणं

इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं संसुद्धं नेयाउयं सल्लकत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमसंदिद्धं सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं ।

एत्थ ठिया जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणमन्तं करेंति ।

—सूयगडाङ्ग-नालंदइज्जज्झयण,

अप्पा

से ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरंसे, ण परिमंडले;

ण किण्हे, ण णीले, ण पीए, ण लोहिए, ण सुक्किले; ण सुरहिगंधे, ण दुरहिगंधे;

ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाए, ण अंबिले, ण महुरे; ण कक्खडे, ण मउए, ण गरुए, ण लहुए, ण सीए, ण उण्हे, ण णिद्धे, ण लुक्खे;

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है, श्रेष्ठ है, केवलिप्ररूपित है, परिपूर्ण है, संशुद्ध है, न्यायसंगत है, शल्य को काटने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति का मार्ग है, मुक्तिरूपी महानगर का मार्ग है, निर्वाण का मार्ग है, अवितथ (यथातथ्य) है, असंदिग्ध है और सब दुःखों को नष्ट करने का मार्ग है।

इसमें रहे हुए (इसका आश्रय लेने वाले) जीव सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं और सब दुःखों का अन्त करते हैं।

—सूत्रकृताङ्ग—नालन्दीय अध्ययन

आत्मा

वह (आत्मा) न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न गोल है, न त्रिकोण है, न चतुष्कोण है और न मण्डलाकार है।

वह न काला है, न नीला है, न पीला है, न लाल है, न सफेद है।

वह न सुरभिगन्ध वाला है, न दुर्गन्ध वाला है।

वह न तिक्त है, न कडुआ है, न कसैला है, न खट्टा है और न मीठा है।

वह न कर्कश है, न मृदु है, न भारी है, न हल्का है, न ठंडा है, न गरम है, न स्निग्ध है, और न रूक्ष है।

न काया वाला है, न पुनर्जन्मा है, न आसक्त है, न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है। वह ज्ञानमय है, संज्ञामय है।

उपमा नहीं है, अरूपी सत्ता है, वह अवस्था-रहित है, अतः उसे कहने वाला कोई शब्द नहीं है।

सभी स्वर निवृत्त हो जाते हैं, तर्क की वहाँ गति नहीं है, बुद्धि की वहाँ पहुँच नहीं है। वह प्रकाशमय है, समग्र लोक का ज्ञाता है।

वह न शब्द है, न रूप है, न गंध है, न रस है, न स्पर्श है। उसका स्वरूप है, ऐसा मैं कहता हूँ।

—आचाराङ्ग सूत्र अध्ययन ५ उद्दे० ६

माहन् (ब्राह्मण) कौन ? श्रमण कौन ?

भगवान् बोले—जो इन्द्रियों का दमन करने वाला है, मुक्त होने योग्य है और जिसने शरीर का ममत्व त्याग दिया है वह माहन (ब्राह्मण), श्रमण, भिक्षु या निर्ग्रन्थ कहा जाता है।

ब्राह्मण :— जो सब पाप कर्मों से निवृत्त हो चुका है, जो राग, द्वेष, कलह, मिथ्याकलंक, चुगली, दूसरों की निन्दा, अरति, रति, मायामृषा और मिथ्यादर्शनशल्य से विरत हो गया है, जो पाँच समितियों से समित है, जो ज्ञान आदि गुणों से युक्त है, जो सदा संयम में यत्न करता है, जो क्रोध नहीं करता है और मान नहीं करता है वह माहन (ब्राह्मण) कहा जाता है।

ण काऊ (ओ), ण रूहे, ण संगे, ण इत्थी, ण पुरिसे ण अन्नहा, परिण्णे, सण्णे;

उवमा ण विज्जति, अरूवी सत्ता, अपयस्स पयं नत्थि, सव्वे सरा णियट्टंति, तक्का जत्थ ण विज्जंति, मती तत्थ ण गाहिता, ओए, अप्पतिट्ठाणस्स खेयन्ने।

से ण सद्दे, ण रूवे, ण गंधे, ण रसे, ण फासे इच्चेतावंति त्ति बेमि ॥

—आयारंगसुत्तं अ. ५, उद्देशक ६

को माहणो ? को समणो ?

अहाह भगवं—एवं से दन्ते दविए वोसट्ठकाए त्ति वच्चे माहणे, समणे, भिक्खू, निग्गंथे त्ति वा।

माहणः—विरए सव्वपावकम्मेहिं पिज्जदोसकलह-अब्भक्खाण-पेसुन्न--परपरिवाय-अरइरइ--मायामोस-मिच्छा-दंसणसल्लविरए समिए सहिए सया जए नो कुज्झे नो माणी माहणेत्ति वच्चे ॥ १ ॥

न काया वाला है, न पुनर्जन्मा है, न आसक्त है, न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है। वह ज्ञानमय है, संज्ञामय है।

उपमा नहीं है, अरूपी सत्ता है, वह अवस्था-रहित है, अतः उसे कहने वाला कोई शब्द नहीं है।

सभी स्वर निवृत्त हो जाते हैं, तर्क की वहाँ गति नहीं है, बुद्धि की वहाँ पहुँच नहीं है। वह प्रकाशमय है, समग्र लोक का ज्ञाता है।

वह न शब्द है; न रूप है, न गंध है, न रस है, न स्पर्श है। उसका स्वरूप है, ऐसा मैं कहता हूँ।

—आचाराङ्ग सूत्र अध्ययन ५ उद्दे० ६

माहन् (ब्राह्मण) कौन? श्रमण कौन?

भगवान् बोले—जो इन्द्रियों का दमन करने वाला है, मुक्त होने योग्य है और जिसने शरीर का ममत्व त्याग दिया है वह 'माहन (ब्राह्मण), श्रमण, भिक्षु या निर्ग्रन्थ कहा जाता है।

ब्राह्मण :— जो सब पाप कर्मों से निवृत्त हो चुका है, जो राग, द्वेष, कलह, मिथ्याकलंक, चुगली, दूसरों की निन्दा, अरति, रति, मायामृषा और मिथ्यादर्शनशल्य से विरत हो गया है, जो पाँच समितियों से समित है, जो ज्ञान आदि गुणों से युक्त है, जो सदा संयम में यत्न करता है, जो क्रोध नहीं करता है और मान नहीं करता है वह माहन (ब्राह्मण) कहा जाता है।

समणे:—एत्थ वि समणे अनिस्सिए अणियाणे आयाणं च अइवायं च मुसावायं च बहिद्धं च कोहं च माणं च मायं च लोहं च पिज्जं च दोसं च इच्चेव जओ जओ आयाणं अप्पणो पदोसहेऊ तओ तओ आयाणाओ पुव्वं पडिविरए पाणाइवाया सिआ दन्ते दविए वोसट्ठ-काए समणे त्ति वच्चे ॥ २ ॥

भिक्खु:—एत्थ वि भिक्खू अणुन्नए विणीए नामए दंते दविए वोसट्ठकाए संविधूणीय विरूवरूवे परीसहोवसग्गे अज्झप्पजोगसुद्धादाणं उवट्ठिए ठिअप्पा संखाए परदत्त-भोई भिक्खू त्ति वच्चे ॥ ३ ॥

निग्गंथे:—एत्थ वि निग्गंथे एगे एगविऊ बुद्धे संछिन्नसोए सुसंजए सुसमिए सुसामाइए आयवायपत्ते विऊ दुहओ वि सोयपलिछिन्ने धम्मट्ठी धम्मविऊ नियागपडिवन्ने समियं चरे दंते दविए वोसट्ठकाए निग्गंथे त्ति वच्चे ॥ ४ ॥

—सूयगडाङ्ग—गाहाज्झयणं

श्रमण:—जो साधु शरीरादि में आसक्त नहीं होता है, अपने तप आदि का सांसारिक सुख रूप फल मिलने की कामना नहीं करता है, जो कर्म-बन्धन के कारणों को हिंसा को, झूठ को, मैथुन को, क्रोध-मान-माया-लोभ को, राग-द्वेष को और जिन जिन से कर्म-बन्धन होता है और आत्मा द्वेष का पात्र बनता है उनको त्याग देता है, प्राणातिपात आदि से सम्पूर्ण रूप से विरत होता है, जो इन्द्रियों को वश में करता है, जो मुक्त होने की योग्यता रखता है और जिसने शरीर का ममत्व छोड़ दिया है वह श्रमण कहा जाता है।

भिक्षु:—पूर्वोक्त गुण से युक्त होकर जो पुरुष अभिमान नहीं करता है, गुरु आदि के प्रति विनय का व्यवहार करता है, जो नम्र है, दान्त है, मुक्ति के योग्य है, शरीर के मोह का त्यागी है, जो नाना प्रकार के परीषह-उपसर्गों को सहन करता है, जिसका चारित्र अध्यात्म योग के प्रभाव से निर्मल है, जो संयम में उद्यत है, जो मोक्ष मार्ग में स्थित है और जो संसार की असारता को जानकर दूसरों के द्वारा दिये हुए भिक्षान्न मात्र से अपना निर्वाह करता है उसे भिक्षु कहना चाहिए।

निर्ग्रन्थ:—जो रागद्वेष रहित होने से अकेला है, जो एक आत्मा के स्वरूप को जानता है, जो तत्त्वों का वेत्ता है, जो आस्रव द्वारों को छेदने वाला है, सुसंयत है, सुसमित है, जो शत्रु मित्र में समभाव रखता है, जो आत्मा के सच्चे स्वरूप को जानता है, जो विद्वान है, जो द्रव्य और भाव दोनों ही प्रकार के संसार स्रोत को छेदने वाला है, धर्मार्थी है, धर्मवेत्ता है, मोक्ष मार्ग में स्थित है; जो सम्यक् विचरण करता है, दान्त है, मुक्ति के योग्य है, और शरीर ममता का जिसने त्याग किया है वह निर्ग्रन्थ कहा जाता है। —सूत्रकृताङ्ग गाथाध्ययन १६

अट्टणसाला

तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते जेणेव अट्टण-साला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणु-पविसइ, अणुपविसित्ता—

अणेगवायामजोग्गवग्गणवामद्दणमल्लजुद्धकरणेहिं संते परिस्संते सयपागसहस्सपागेहिं सुगंधतेल्लमाइएहिं पीणणि-ज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विहणिज्जेहिं सव्विंदिय-गायपल्हायणिज्जेहिं अब्भिगेहिं अब्भिंगिए समाणे तेल्ल-चम्मंसि पडिपुण्णपाणिपायसुउमालकोमलतलेहिं पुरिसेहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं निउणसिप्पोवग-एहिं अब्भिगणपरिमद्दणुव्वलकरणगुणणिम्माएहिं अट्ठि-सुहाए मंससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए संबाहणाए संबाहिए समाणे अवगयखेयपरिस्समे अट्टणसालाओ पडि-णिक्खमइ ॥

—औपपातिक सूत्र

सूत्र ३१

व्यायाम शाला

तत्पश्चात् बिम्बसार का पुत्र राजा कोणिक जिधर व्यायाम-शाला थी उधर जाता है, उधर जाकर व्यायाम शाला में प्रवेश करता है, प्रवेश करके अनेक प्रकार के व्यायाम—कूदना, अंग-मर्दन करना, मल्लयुद्ध करना आदि के द्वारा थक कर, पूर्ण थक कर शतपाक-सहस्रपाक सुगन्धित तैलादि से तथा रसादि धातु बनाने वाले, स्फूर्ति पैदा करने वाले, मस्ती पैदा करने वाले, धातुओं की पुष्टि करने वाले, सब इन्द्रियों और अवयवों को आनन्द देने वाले मालिश के साधनों से मालिश किये जाने पर तैलचर्म पर आसीन होकर पूर्ण और सुकोमल हाथ-पैर वाले, अवसरज्ञ, कार्य करने में दक्ष, अनुभवी, कुशल, बुद्धिमान्, अङ्ग-मर्दनादि कला में निपुण, अभ्यङ्गन-मर्दन उपलेपन के विशेषज्ञ पुरुषों के द्वारा हड्डियों को सुख देने वाली, मांस को सुख देने वाली, त्वचा को सुख देने वाली और रोम को सुख देने वाली इस प्रकार चार तरह की मालिश करवा कर श्रम और खेद के दूर होने पर व्यायामशाला से बाहर आता है।

—औपपातिक सूत्र ३१

सम्मसुअं-गणिपिडगं

से किं तं सम्मसुअं ?

जं इमं अरहंतेहिं भयवंतेहिं उप्पण्णनाणदंसणधरेहिं तेलुक्कनिरिक्खियमहियपूइएहिं तीयपडुप्पण्णमणागयजाणएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीअं दुवालसंगं गणिपिडगं तं जहा—

(१) आयारो, (२) सूयगडो, (३) ठाणं, (४) समवाओ, (५) विवाहपण्णत्ती, (६) नायाधम्मकहाओ, (७) उवासगदसाओ, (८) अंतगडदसाओ, (९) अणुत्तरोववाइयदसाओ, (१०) पण्हवागरणाइं, (११) विवागसुअं, (१२) दिट्ठिवाओ ।

इच्चेअं दुवालसंगं गणिपिडगं चोद्दसपुव्विस्स सम्मसुअं अभिण्णदसपुव्विस्स सम्मसुअं, तेण परं भिण्णेसु भयणा, से तं सम्मसुअं ॥

—नन्दीसूत्र

उदायणे राया

तए णं से उदायणे राया अन्नया कयाइ पोसहसालाए पोसहिए एगे अबीए पक्खियं पोसहं सम्मं पडिजागरमाणे विहरइ ॥

सम्यक् श्रुत—गणिपिटक

सम्यक् श्रुत क्या है ?

जो अर्हन्त भगवान्—जिन्हें केवल ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हो गया है, जो तीन लोक के प्राणियों के द्वारा भक्ति पूर्वक देखे गये हैं, वन्दित हैं और पूजित हैं, जो भूत-वर्त्तमान और भविष्य के ज्ञाता हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, उनके द्वारा प्रणीत बारह अङ्ग रूप गणिपिटक सम्यक् श्रुत है। उनके नाम:—

१ आचाराङ्ग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग, ५ विवाहप्रज्ञप्ति, ६ ज्ञाताधर्मकथा, ७ उपासकदशाङ्ग, ८ अन्तकृत-दशांग, ९ अनुत्तरौपपातिक दशांग, १० प्रश्न व्याकरण, ११ विपाकसूत्र और १२ दृष्टिवाद।

चौदह पूर्वधारियों को होने वाला यह द्वादशांग गणि-पिटक का ज्ञान सम्यक् श्रुत है, सम्पूर्ण दश पूर्व धारियों का भी सम्यक् श्रुत है इसके आगे अर्थात् नौ-आठ आदि पूर्वधरों का ज्ञान सम्यक् श्रुत भी हो सकता है और असम्यक् श्रुत भी; इस प्रकार भजना है।

यह सम्यक् श्रुत का स्वरूप है।

—नन्दीसूत्र

उदायन राजा

किसी समय उदायन राजा पौषध-शाला में पोषध करके अकेला, अद्वितीय, पाक्षिक पौषध का सम्यक् प्रकार से आरा-धन करता हुआ विचरता था।

तओ तस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि जागरियं करेमाणस्स एयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था—

"धन्ना णं ते गामनगरा, जत्थ णं समणे वीरे विहरइ, धम्मं कहेइ; धन्ना णं ते राईसरपभिईओ जे समणस्स महावीरस्स अंतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं निसामेंति, एवं पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं सावगधम्मं दुवालसविहं पडिवज्जंति एवं मुंडा भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वयंति।

जइ णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं दूइज्जमाणे इहेव वीयभए आगच्छेज्जा ता णं अहमवि भगवओ अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वएज्जा॥"

तए णं भगवं उदायणस्स एयारूवं अज्झत्थियं जाणित्ता चंपाओ पडिणिक्खमित्ता जेणेव वीयभए नयरे जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेवं विहरइ। तओ परिसा निग्गया उदायणे य।

तए णं उदायणे महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा हट्ठतुट्ठे एवं वयासीः—

'जं नवरं जेट्ठपुत्तं रज्जे अहिसिंचामि तओ णं तुब्भं अंतिए पव्वयामि।'

सामी भणइ—'अहासुहं मा पडिबंधं करेह।' तओ णं उदायणे आभिओगियं हत्थिरयणं दुरुहित्ता सए गिहे आगए।

तब मध्यरात्रि के समय धर्म-जागरणा करते हुए उसे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ।

"वे ग्राम और नगर धन्य हैं, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विचरते हैं, और धर्मोपदेश देते हैं। वे राजा-युवराज सेठ वगैरह धन्य हैं जो श्रमण भगवान महावीर के पास केवली-प्ररूपित धर्म का श्रवण करते हैं और पाँच अणुव्रत रूप, सात शिक्षा व्रत रूप-बारह प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार करते हैं और मुण्डित होकर गृहस्थाश्रम से निकल कर अनगार धर्म में प्रव्रजित होते हैं।"

उदायन राजा के इस प्रकार के विचार को जानकर श्रमण भगवान् महावीर चम्पा नगरी से निकल कर जिस ओर वीतभय नामक नगर था, जिस ओर मृगवन नामक उद्यान था, उधर पधारे। परिषद् उन्हें वन्दन के लिए निकली। उदायन राजा भी वन्दन के लिए गया।

तब उदायन राजा महावीर के पास धर्मोपदेश सुनकर हर्षित होता हुआ इस प्रकार बोलाः—

"हे भगवन्! आप जैसा कहते हैं वही सत्य है इत्यादि, विशेष यह है कि मैं ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक करके आपके पास प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ।"

महावीर स्वामी बोले—"जैसे सुख हो वैसा करो। विलम्ब न करो।" तदनन्तर उदायन राजा आभियोगिक हस्ति रत्न पर आरूढ होकर अपने घर आया।

तओ उदायणस्स एयारूवे अज्झत्थिए जाए 'जइ णं अभिइं कुमारं रज्जे ठवित्ता पव्वयामि तो अभिई रज्जे य रट्ठे य जाव जणवए य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए अणाइयं अणवयग्गं संसारकंतारं अणुपरियट्टिस्सइ।

"तं सेयं खलु मे नियगं भाइणेज्जं केसिं कुमारं रज्जे ठवित्ता पव्वइत्तए।"

एवं संपेहेत्ता सोभणे तिहिकरणमुहुत्ते कोडुंबियपुरिसे य सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव केसिस्स कुमारस्स रायाभिसेयं उवट्ठवेह।" तओ महिड्ढीए अभिसित्ते केसीकुमारे राया जाए जाव पसासेमाणे विहरइ।

तओ उदायणे राया केसिं रायं आपुच्छइ—

अहं णं देवाणुप्पिया संसारभउव्विग्गो पव्वयामि। तओ केसी राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव उदायणस्स रन्नो महत्थ महरियं निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह।"

तओ महया विभूईए अभिसित्ते सिबियारूढे भगवओ समीवे गंतूण पव्वइए जाव बहूणि चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसमासद्धमासाईणि तवोकम्माणि कुव्वमाणे विहरइ।

\+ \+ \+ \+

तत्पश्चात् उदायन को इस प्रकार अध्यवसाय हुआ कि यदि मैं अभिजित् कुमार को राज्यारूढ करके दीक्षा लेता हूँ तो अभिजित् कुमार राज्य में, राष्ट्र में यावत् जनपद में और मानुषिक काम-भोगों में मूर्छित होकर अनादि-अनन्त संसार रूपी महावन में भटकता रहेगा। "इसलिए अच्छा है कि मैं अपने भागिनेय (भानेज) केशी कुमार को राज्य पर आरूढ कर दीक्षा लूँ।"

ऐसा विचार कर शुभ तिथि, करण और मुहूर्त्त में कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर वह इस प्रकार बोला:—

'शीघ्र ही केशी कुमार के राज्याभिषेक की तैयारी करो।' तत्पश्चात् केशी कुमार का धूमधाम से राज्याभिषेक हुआ। वह राजा हो गया यावत् वह शासन करता हुआ विचरने लगा।

तदनन्तर उदायन राजा ने केशी राजा से पूछा कि—हे देवानुप्रिय! मैं संसार-भय से उद्विग्न हुआ हूँ अतः दीक्षा धारण करता हूँ।

तब केशी राजा कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर इस प्रकार कहने लगा—"शीघ्र ही उदायन राजा के महर्द्धिक, बहुमूल्य, दीक्षाभिषेक की तैयारी करो।"

तब विपुल ऋद्धि-समृद्धि के साथ उदायन राजा का दीक्षाभिषेक किया गया और वह पालखी में बैठ कर भगवान् के समीप जाकर दीक्षित हुआ। वह बहुत से उपवास-दो उपवास तीन उपवास-चार उपवास-पाँच उपवास, पन्द्रह उपवास आदि तप करता हुआ विचरने लगा।

\+ \+ \+ \+

तओ से उदायणे अणगारे बहूणि वासाणि सामण्ण-परियागं पाउणित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता जस्स-ट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुंडभावे तमट्ठं पत्ते जाव दुक्ख-पहीणेत्ति। —श्री भगवती सूत्र

खमासमणे गयसुकुमाले

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे अरहआ अरिट्ठ-णेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमं-सइ। वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ। पडिणिक्ख-मित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए। उवाग-मित्ता थंडिल्लं पडिलेहेइ। पडिलेहित्ता इसिपब्भारगएणं काएणं दोवि पाए साहट्टु एगराइं महापडिमं संपज्जित्ताणं विहरइ।

इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए बार-वईओ नयरीओ बहिया पुव्वणिग्गए। समिहाओ दब्भे य कुसे य पत्तामोडं च गेण्हइ। गेण्हित्ता तओ पडिणियत्तइ, पडिणियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणे संझाकालसमयंसि पविरल-मणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ, पासित्ता तं वेरं सरइ। सरित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसियमाणे एवं वयासी—

तब उन उदायन अनगार ने बहुत वर्षों तक साधु-पर्याय का पालन कर मास-क्षमण अनशन कर, जिस हेतु से नग्नभाव, मुण्डभाव (साधुदशा) अंगीकार किया जाता है उस हेतु को प्राप्त कर लिया (अर्थात् अपना मुक्ति-मनोरथ पूर्ण किया) यावत् वह सब दुःखों से मुक्त हो गये।

—श्री भगवतीसूत्र

क्षमाश्रमण गजसुकुमार

तब वह गजसुकुमार अनगार भगवान् अरिष्टनेमि से आज्ञा प्राप्त करने पर भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दना-नमस्कार करके भगवान् अरिष्टनेमि के पास से सहस्राम्रवन उद्यान से बाहर निकलते हैं। बाहर निकल कर वे जिस ओर महाकाल नामक श्मशान था उस ओर गये। वहाँ जाकर शुद्ध भूमि की प्रतिलेखना की। शुद्ध भूमि देखकर अपने शरीर को सीधा उन्नत रखकर दोनों पाँवों को इकट्ठा कर के एक रात्रि की महा-प्रतिमा अंगीकार कर विचरते हैं।

इधर वह सोमिल ब्राह्मण यज्ञ-सामग्री के लिए द्वारका नगरी से पहले ही बाहर चला गया था। वह इन्धन, दूब, कुश और पत्रादि ग्रहण करता है। ग्रहण करके वह लौटता है। लौटते हुए महाकाल श्मशान के नजदीक जाता हुआ सन्ध्या काल के समय-जब कि मनुष्यों का आवागमन बन्द सा हो गया था, गजसुकुमार अनगार को देखता है। उन्हें देखकर पूर्व वैर को याद करता है। वैर स्मरण कर क्रोध से लाल हो जाता है, रोष करता है, कुपित हो जाता है, अत्यन्त क्रोध करता है। क्रोधाग्नि से जलता हुआ वह ऐसा बोला—

'एस णं भे ! से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थियपत्थिय जाव परि-वज्जिए जेणं मम धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपइयं कालवत्तिणिं विप्पजहेत्ता मुंडे पव्वइए। तं सेयं खलु ममं गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए।'

एवं संपेहित्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करेत्ता सरसं मट्टियं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले कुमारे तेणेव उवागच्छइ। उवागमित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चिययाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खइरंगारे कहल्लेण गेण्हइ। गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ। पक्खिवित्ता भीओ तओ खिप्पामेव अवक्कमइ। अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूआ उज्जला जाव दुरहियासा।

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं अहियासेइ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे। तओ पच्छा सिद्धे।—अंतगडदसाओ

अरे ! यह वह अप्रार्थित का प्रार्थी यावत् श्री धृति-कीर्ति रहित गजसुकुमार कुमार है जिसने मेरी लड़की, सोमश्री भार्या की आत्मजा सोम दारिका को यौवन वय में, बिना किसी दोष के, छोड़कर मुण्डित होकर दीक्षा धारण कर ली है। इसलिए मुझे गजसुकुमार से वैर निकालने का अच्छा मौका मिला है। ऐसा विचार कर वह इधर-उधर चारों दिशाओं में देखता है। वह गीली मिट्टी लेता है और जिधर गजसुकुमार थे उधर जाता है। वहाँ जाकर गजसुकुमार के मस्तक पर मिट्टी की पाल बाँधता है और जलती हुई चिता से फूले हुए किंशुक के समान खैर के अङ्गारे फूटे हुए घड़े के खप्पर से ग्रहण करता है। उन अङ्गारों को लेकर वह गजसुकुमार अनगार के मस्तक पर रख देता है। रखते ही, भयभीत होकर वह झटपट वहाँ से दूर हो जाता है। वह जिस ओर से आया था उसी ओर चला जाता है।

तत्पश्चात् गजसुकुमार अनगार के शरीर में उज्ज्वल यावत् असह्य वेदना उत्पन्न हुई।

तब गजसुकुमार अनगार सोमिल ब्राह्मण पर मन से भी द्वेष न करते हुए उस भयंकर वेदना को सहन करते हैं।

उस उज्ज्वल वेदना को सहन करते हुए गजसुकुमार अनगार को शुभ परिणामों से, शुभ अध्यवसायों से तदावरणीय कर्मों के क्षय से कर्म रूपी रज-मैल को दूर करने वाले अपूर्व करण में प्रविष्ट होने पर अनन्त और सर्व श्रेष्ठ केवल ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुए। इसके बाद वे सिद्ध हुए।

—अन्तकृतदशाङ्ग सूत्र

'एस णं भे! से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थियपत्थिय जाव परि-वज्जिए जेणं मम धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपइयं कालवत्तिणिं विप्पजहेत्ता मुंडे पव्वइए। तं सेयं खलु ममं गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए।'

एवं संपेहित्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करेत्ता सरसं मट्टियं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले कुमारे तेणेव उवागच्छइ। उवागमित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चिययाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खइरंगा कहल्लेण गेण्हइ। गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ। पक्खिवित्ता भीओ तओ खिप्पामेव अवक्कमइ। अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूआ उज्जला जाव दुरहियासा।

तए णं से गयसुकुमालस्स अणगारे सोमिलस्स माह-णस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं अहियासेइ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे केवलवर-णाणदंसणे समुप्पण्णे। तओ पच्छा सिद्धे। —अंतगडदसाओ

अरे ! यह वह अप्रार्थित का प्रार्थी यावत् श्री धृति-कीर्ति रहित गजसुकुमार कुमार है जिसने मेरी लड़की, सोमश्री भार्या की आत्मजा सोम दारिका को यौवन वय में, बिना किसी दोष के, छोड़कर मुण्डित होकर दीक्षा धारण कर ली है। इसलिए मुझे गजसुकुमार से वैर निकालने का अच्छा मौका मिला है। ऐसा विचार कर वह इधर-उधर चारों दिशाओं में देखता है। वह गीली मिट्टी लेता है और जिधर गजसुकुमार थे उधर जाता है। वहाँ जाकर गजसुकुमार के मस्तक पर मिट्टी की पाल बाँधता है और जलती हुई चिता से फूले हुए किंशुक के समान खैर के अङ्गारे फूटे हुए घड़े के खप्पर से ग्रहण करता है। उन अङ्गारों को लेकर वह गजसुकुमार अनगार के मस्तक पर रख देता है। रखते ही, भयभीत होकर वह झटपट वहाँ से दूर हो जाता है। वह जिस ओर से आया था उसी ओर चला जाता है।

तत्पश्चात् गजसुकुमार अनगार के शरीर में उज्ज्वल यावत् असह्य वेदना उत्पन्न हुई।

तब गजसुकुमार अनगार सोमिल ब्राह्मण पर मन से भी द्वेष न करते हुए उस भयंकर वेदना को सहन करते हैं।

उस उज्ज्वल वेदना को सहन करते हुए गजसुकुमार अनगार को शुभ परिणामों से, शुभ अध्यवसायों से तदावरणीय कर्मों के क्षय से कर्म रूपी रज-मैल को दूर करने वाले अपूर्व करण में प्रविष्ट होने पर अनन्त और सर्व श्रेष्ठ केवल ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुए। इसके बाद वे सिद्ध हुए।

—अन्तकृतदशाङ्ग सूत्र

दयाणुकंपए कण्हे वासुदेवे

तए णं से कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभायाए जाव जलंते, एहाए (जाव) विभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंट-मल्लदामेणं छत्तेणं धरेज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुवमाणीहिं महया भडचडगरपहकरवंदपरिक्खित्ते बारवई नयरीं मज्झंमज्झेणं जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छमाणे एकं पुरिसं पासइ। जुण्णं जरा जज्जरियदेहं (जाव) महइमहालयाओ इट्टगरासीओ एग-मेगं इट्टं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्प-विसमाणं पासइ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकंपण-ट्ठाए हत्थिखंधवरगए चेव इगं इट्टगं गेण्हइ, गेण्हित्ता बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेसेइ।

तए णं कण्हेणं वासुदेवेणं एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिससएहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए।

—अंतगडसुत्तं

दयालु कृष्ण वासुदेव

तब कृष्ण वासुदेव ने प्रातः, रात्रि के प्रभात में परिणत होने पर यावत् सूर्य के प्रकाश करने पर स्नान किया यावत् सर्वालङ्कार विभूषित होकर हाथी पर आरूढ होकर, कोरन्ट फूलों की माला से मण्डित छत्र धारण कर श्वेत और श्रेष्ठ चँवरों के ढुलते हुए, बड़े २ योद्धाओं के समूह से घिरे हुए द्वारिका नगरी के मध्य में होकर जिधर अर्हन्त अरिष्टनेमि थे उधर उन्होंने प्रस्थान किया।

द्वारिका नगरी के मध्य में से निकलते हुए कृष्ण वासुदेव ने एक पुरुष को देखा। वह पुरुष वृद्ध था। उसका शरीर जरा-जर्जरित था। वह ईंटों के एक बड़े भारी ढेर में से एक-एक ईंट लेकर बाहर-मार्ग से घर के अन्दर रख रहा था।

तब कृष्ण वासुदेव ने उस वृद्ध पर अनुकम्पा करने के लिए हाथी पर बैठे-बैठे ही एक ईंट लेकर बाहर मार्ग से घर के अन्दर रख दी।

तब कृष्ण वासुदेव के द्वारा एक ईंट उठायी जाने पर अनेक सैकड़ों पुरुषों ने भी ईंट उठा कर उस ईंट के बड़े भारी ढेर को बाहर मार्ग से घर के अन्दर रख दिया।

—अन्तकृत सूत्र

भगवओ अंतेवासी

तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे समणा भगवंतो अप्पेगइया उग्गपव्वइया भोगपव्वइया राइण्ण-णाय-कोरव्व-खत्तियपव्वइया भडा जोहा सेणावइपसत्थारो सेट्ठी इब्भा अण्णे य बहवे एवमाइणो उत्तमजाइकुलरूव-विणय--विण्णाण-वण्णलावण्ण—विक्कम पहाण-सोभग्गकंतिजुत्ता बहुधणधणणिचयपरियालफिडिया णरवइगुणाइरेगा इच्छियभोगा सुहसंपललिया किंपागफलोवमं च मुणिय विसयसोक्खं जलबुब्बुयसमाणं कुसग्गजलबिंदुचंचलं जीवियं य णाऊण अधुवमिणं रयमिव पडग्गलग्गं संविधुणित्ताणं चइत्ता हिरण्णं, चिच्चा सुवण्णं चिच्चा धणं धण्णं बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं रज्जं रट्ठं पुरं अंतेउरं चिच्चा विउलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइयं संतसारसावतेज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं च दाइयाणं परिभायइत्ता मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

—औपपातिक सूत्र

भगवान् का शिष्य समुदाय

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य बहुत से पूज्य श्रमण संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विचरते थे। उनमें कोई उग्रकुल के दीक्षित हुए थे, कोई भोगकुल के दीक्षित हुए थे, कोई राजन्य कुल के, कोई ज्ञातवंश के, कोई कुरुवंश के और कोई क्षत्रिय वर्ण के दीक्षित हुए थे। शूरवीर, योद्धा, सेनापति, धर्मशास्त्र पाठक (पुरोहित) श्री देवता युक्त स्वर्ण का पट्टा मस्तक पर धारण करने वाले सेठ, हस्ति-प्रमाण द्रव्यराशि वाले धनिक इत्यादि अनेक उत्तम जाति-कुल-रूप-विनय-विज्ञान-वर्ण-लावण्य-विक्रम वाले, प्रधान सौभाग्य और कान्ति से युक्त, बहुत धन-धान्य और परिवार वाले, राजा के वैभव-सुख का भी अतिक्रमण करने वाले, इच्छित भोग भोगने वाले, सुख की गोद में पले हुए व्यक्ति विषय-सुख को किंपाक फल के समान समझ कर, जीवन को जल बुद्बुद के समान और कुश के अग्र भाग पर रहे हुए जलबिंदु के समान चञ्चल जानकर, सांसारिक सुख को अध्रुव जानकर कपड़े पर लगी हुई धूल की तरह उसे झटक कर, चाँदी को छोड़कर, सोने को छोड़कर धन-धान्य-सेना-वाहन, कोष, सोना, रत्न मणि मौक्तिक, शंख, विद्रुम, पद्मरागादि विद्यमान प्रधान द्रव्य को छोड़ कर, गुप्त धन को प्रकट कर, दान देकर, गोत्रिक जनों में विभक्त कर मुण्डित होकर गृहस्थाश्रम से निकल कर; अनगार धर्म में प्रव्रजित हुए थे। प्रव्रजित होकर वे संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

—औपपातिक सूत्र

दढपइण्णस्स दारगस्स कला-सिक्खणं

तं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो साइरेगट्ठवासजायगं जाणित्ता सोयणंसि तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेहिंति। तए णं से कलायरिए तं दढपइण्णं दारगं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिकलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहाविहिति सिक्खाविहिति; तं जहा—

लेहं गणियं रूवं णट्टं गीयं वाइयं सरगयं पुक्खरगयं समतालं; जुयं जणवायं पासगं अट्ठावयं; पोरेकच्चं दगमट्टियं, अण्णविहिं पाणविहिं सयणविहिं, अज्जं पहेलियं मागहियं गाहं गीइयं सिलोयं, हिरण्णजुत्तिं सुवण्णजुत्तिं गंधजुत्तिं चुण्णजुत्तिं आभरणजुत्तिं, तरुणिपडिकम्मं इत्थिलक्खणं पुरिसलक्खणं हयलक्खणं गयलक्खणं गोणलक्खणं कुक्कुडलक्खणं चक्कलक्खणं छत्तलक्खणं चम्मलक्खणं दंडलक्खणं असिलक्खणं मणिलक्खणं वत्थुविज्जं खंधारमाणं नगरमाणं वत्थुनिवेसणं;

बालक दृढ़प्रतिज्ञ का कलाशिक्षण

बालक दृढप्रतिज्ञ को आठ वर्ष से कुछ अधिक की अवस्था का हुआ जान कर उसके माता-पिता शुभ तिथि-करण-दिवस-नक्षत्र और शुभ मुहूर्त में कलाचार्य के पास ले जाएँगे। तब कलाचार्य उस दृढ प्रतिज्ञ बालक को लेखादि गणित प्रधान और शकुनरुत पर्यन्त बहत्तर कलाएँ सूत्र व्याख्यान और प्रयोग के द्वारा सिखाएँगे और अभ्यास करावेंगे। बहत्तर कलाओं के नाम इस प्रकार हैं:—

लेख, गणित, रूप, नृत्य, गीत, वाद्य, स्वरगत, पुष्करगत (ढोल आदि वादित्र का जानना) समताल(तालियाँ बजाना), द्यूत, जनवाद, पाँसा खेलने की कला, नगर रक्षा करने की कला, जल और मिट्टी को मिलाकर विविध वस्तु बनाने की कला, अन्न विधि, पानविधि, शयनविधि, आर्या-कविता बनाने की कला, गाथा; गीत, श्लोक बनाने की कला, हिरण्ययुक्ति, सुवर्णयुक्ति, गंधयुक्ति, चूर्णयुक्ति, आभरणयुक्ति, तरुणि प्रतिकर्म, (स्त्री को-शिक्षा देने की कला) स्त्री लक्षण, पुरुष लक्षण, अश्वलक्षण, गज-लक्षण, गाय-बैल के लक्षण, कुकड़े के लक्षण, चक्रलक्षण, छत्र-लक्षण, चर्म लक्षण, दण्डलक्षण, असिलक्षण, मणिलक्षण, वस्तु-विद्या, छावनी(फौज का पड़ाव आदि) डालने की विद्या, नगरि-मान, वस्तु निवेशन, व्यूह, प्रतिव्यूह, चार, परिचार, चक्रव्यूह, गरुड़ व्यूह, शकटव्यूह, युद्ध, नियुद्ध, युद्धातियुद्ध, मुष्टियुद्ध, बाहु-युद्ध, लता युद्ध, ईषदर्थ, छत्रप्रवाद, धनुर्वेद, हिरण्यपाक, सुवर्ण-पाक(मणिपाक, धातुपाक) वर्त्तखेड, मुक्ताखेड, नालिकाखेड, पत्र-च्छेद्य, कटकछेद्य, सीजय, निर्जीव और शकुनरुत इस तरह बहत्तर कला सिखाकर अभ्यास कराकर माता-पिता के पास ले जावेंगे।

वूहं पडिवूयं चारं परिचारं चक्कवूहं गरुलवूहं सगड-वूहं, जुद्धं निजुद्धं जुद्धाइजुद्धं मुट्ठिजुद्धं बाहुजुद्धं लयाजुद्धं ईसत्थं छत्तप्पवाहं धणुव्वेयं हिरण्णपागं सुवण्णपागं (मणिपागं धाउपागं) वट्टखेड्डं सुत्ताखेड्डं णालियाखेड्डं पत्तच्छेज्जं कडगच्छेज्जं सज्जीवं निज्जीवं सउणरुयमिति बावत्तरिकलाओ सेहावित्ता सिक्खावित्ता अम्मापिईणं उवणेहिंति ।

× × ×

तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारगस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थगंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेहिंति सम्माणेहिंति सम्माणित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइस्संति दलइत्ता पडिविस-ज्जेहिंति ।

× + +

तए णं से दढपइण्णे दारए बावत्तरिकलापंडिए नवंग-सुत्तपडिबोहिए अट्ठारसदेसीभासाविसारए गीयरई गंधव्व-णट्टकुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहुप्प-मद्दी वियालचारी साहसिए अलं भोगसमत्थे यावि भविस्सइ ।

× + ¹

तब उस दृढ प्रतिज्ञ बालक के माता-पिता उन कलाचार्य का विपुल अशन-पान-खादिम-स्वादिम, वस्त्र-गंध-माल्य और अलंकारों से सत्कार करेंगे, सन्मान करेंगे। सत्कार-सन्मान कर जीवन पर्यन्त निर्वाह हो सके इतना विपुल प्रीतिदान देंगे और उन्हें विदाई देंगे।

+ + +

तदनन्तर वह दृढप्रतिज्ञ बालक बहत्तर कलाओं में पण्डित होगा उसके नौ अंग जो बचपन के कारण अव्यक्त चेतन वाले होंगे वे युवावस्था के कारण जागृत होंगे। वह अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में विशारद होगा। गायन में उसकी रुचि होगी। गन्धर्व नृत्य में कुशल होगा। अश्वयुद्ध, गज-युद्ध, रथयुद्ध करने वाला, बाहुप्रमर्दी, विकालचारी साहसिक और भोगसमर्थ होगा।

+ + +

तए णं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो बावत्तरिकला-पंडियं जाव अलं भोगसमत्थं वियाणित्ता विउलेहिं अण्ण-भोगेहिं पाणभोगेहिं लयणभोगेहिं वत्थभोगेहिं सयण-भोगेहिं कामभोगेहिं उवणिमंतेहिंति ॥

—औपपातिक सूत्र
सूत्र १०६–११०

चउव्विहा बुद्धी

उप्पत्तिया वेणइया, कम्मया परिणामिया ।
बुद्धी चउव्विहा वुत्ता, पंचमा नोवलब्भइ ॥
पुव्वमदिट्ठमस्सुयमवेइयतक्खणविसुद्धगहियत्था ।
अव्वाहयफलजोगा बुद्धी उप्पत्तिया नाम ॥
भरनित्थरणसमत्था तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला ।
उभओ लोगफलवई विणयसमुत्था हवइ बुद्धी ॥
उवओगदिट्ठसारा कम्मपसंगपरिघोलणविसाला ।
साहुक्कारफलवई कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी ॥
अणुमाणहेउदिट्ठंतसाहिया वयविवागपरिणामा ।
हियनिस्सेयसफलवई बुद्धी परिणामिया नाम ॥

दृढ प्रतिज्ञ बालक को बहत्तर कलाओं में पण्डित यावत् भोग भोगने में समर्थ जानकर उसके माता-पिता विपुल अन्न भोग से, पान भोग से, महल आदि स्थान-भोग से, शयनभोग से और कामभोग से निमंत्रित करेंगे। अर्थात् भोग भोगने के लिए कहेंगे।

—औपपातिक सूत्र

चार प्रकार की बुद्धि

औत्पादिकी, वैनायिकी, कार्म्मिकी और पारिणामिकी इस तरह चार प्रकार की बुद्धियाँ कही गई हैं। पाँचवीं बुद्धि नहीं है।

पहले नहीं देखे हुए, नहीं सुने हुए, नहीं जाने हुए विषय में भी तत्त्क्षण विशुद्ध अर्थ को ग्रहण करने वाली और अव्याहत (अबाधित) फल वाली औत्पादिकी बुद्धि है।

कठिन कार्यभार का निर्वाह करने में समर्थ, धर्म-अर्थ-काम रूप त्रिवर्ग के वर्णन करने वाले सूत्र और अर्थ को ग्रहण करने वाली तथा दोनों लोक में फल देने वाली विनय से प्राप्त होने वाली (वैनेयिकी) बुद्धि है।

एकाग्र चित्त से (उपयोग से) कार्यों के परिणाम को देखने वाली, अनेक तरह के कार्यों के अभ्यास और विचार से विशाल और विद्वानों से की हुई प्रशंसा रूप फल वाली कर्म से उत्पन्न होने वाली (कार्मिकी) बुद्धि है।

अनुमान, हेतु और दृष्टान्त से विषय को सिद्ध करने वाली अवस्था के बढ़ने से पुष्ट होने वाली, हित और कल्याण (मोक्ष) रूप फल वाली पारिणामिकी बुद्धि है।

अणगारा भगवंतो

अणगारा भगवंतो ईरियासमिया भासासमिया एसणासमिया आयाणभंडमत्तणिक्खेवणासमिया, उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपरिट्ठावणियासमिया, मणगुत्ता, वयगुत्ता कायगुत्ता गुत्ता गुत्तिंदिया गुत्तबंभयारी, अकोहा अमाणा अमाया अलोभा संता पसंता उवसंता परिनिव्वुडा अणासवा अग्गंथा छिन्नसोया निरुवलेवा—

कंसपाइव्व मुक्कतोया
संखो इव निरंजणा
जीव इव अपडिहयगई
गगणतलं पिव निरालंबणा
वाउरिव अपडिबद्धा
सारदसलिलं व सुद्धहियया

पूज्य अनगार

घर-बार छोड़ कर साधु बने हुए भाग्यवान् पुरुष ईर्या-समिति का पालन करते हैं। (देखकर यतना पूर्वक चलते हैं), उपयोग पूर्वक सत्य-हित-मित-भाषण करते हैं, निर्दोष रीति से आहारादि की एषणा (गवेषणा और उपयोग) करते हैं, पात्र वस्त्र आदि वस्तुओं को रखने और उठाने में विवेक से काम लेते हैं। मल-मूत्र, नाक का मैल, खंखार, शरीर का मैल आदि को डालने में बड़ी सावधानी और उपयोग रखते हैं। वे मन-वचन और काया को वश में रखते हैं। वे गुप्तियों से गुप्त, इन्द्रियों को वश में रखने वाले और विषयों से बचते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। वे क्रोध, मान, माया और लोभ से रहित हैं। वे शांत प्रशान्त तथा उपशान्त हैं और सब प्रकार के सन्ताप से रहित हैं। वे आस्रवों का सेवन नहीं करते हैं और सब प्रकार के परिग्रहों से रहित हैं। वे संसार के प्रवाह का छेदन किये हुए और कर्म-मल के लेप से रहित होते हैं।

जिस प्रकार कांसे के पात्र में जल का लेप नहीं लगता इसी तरह इन महापुरुषों के कर्म-मैल का लेप नहीं लगता है।

जैसे शंख पर काला रङ्ग आदि नहीं होता, इसी तरह इन पर राग या द्वेष का कोई रङ्ग नहीं होता।

जैसे जीव की गति कहीं नहीं रुकती, इसी तरह उनकी गति भी कहीं नहीं रुकती।

जैसे आकाश किसी के सहारे नहीं रहता, इसी तरह ये भी किसी के सहारे नहीं रहते।

ये वायु के समान प्रतिबन्ध-रहित हैं।

शरद् ऋतु के जल के समान इनका हृदय निर्मल होता है।

पुक्खरपत्तं व निरुवलेवा

कुम्मो इव गुत्तिंदिया

विहग इव विप्पमुक्का

खग्गविसाणं व एगजाया

भारंडपक्खी व अप्पमत्ता

कुंजरो इव सोंडीरा

वसभो इव जायत्थामा

सीहो इव दुद्धरिसा

मंदरो इव अप्पकंपा

सागरो इव गंभीरा

चंदो इव सोमलेसा

सूरो इव दित्ततेया

जच्चकंचणगं व जायरूवा

वसुंधरा इव सव्वफासविसहा

सुहुयहुयासणो वि य तेयसा जलंता

— सूत्रकृताङ्ग

किरियाठाण

जैसे कमल के पत्ते पर जल का लेप नहीं लगता इसी तरह इन पर किसी का लेप नहीं लगता (अर्थात् ये अनासक्त होते हैं।)

ये कछुए की तरह इन्द्रियों का गोपन करते हैं।

पक्षी की तरह उन्मुक्त विहारी होते हैं।

गैंडे के सिंग की तरह वे एक ही होते हैं। (अर्थात् राग-द्वेष रहित होने से भाव से अकेले होते हैं।)

ये भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त होते हैं।

हाथी के समान कषायों को या कर्मों को तोड़ने में दक्ष होते हैं।

ये बैल की तरह संयम भार वहन करने में समर्थ होते हैं।

सिंह के समान दुर्धर्ष होते हैं। (अर्थात् परीषहों से पराजित होने वाले नहीं होते हैं।)

मेरु के समान अकम्प होते हैं।

समुद्र के समान गम्भीर होते हैं।

चन्द्र के समान सौम्य और शीतल होते हैं।

सूर्य के समान तेजस्वी होते हैं।

उत्तम जाति वाला सोना जैसे मिट्टी के मैल से रहित होता है वैसे रागादि मैल के छूट जाने से ये शुद्ध स्वरूप वाले होते हैं।

पृथ्वी के समान सब सहन करने वाले होते हैं।

अच्छी तरह आहुति से सिञ्चित अग्नि की तरह ये तेज से देदीप्यमान होते हैं।

—सूत्रकृताङ्ग क्रियास्थान, अध्ययन

धम्माराहणा

समणे भगवं महावीरे धम्मं दुविहं आइक्खइ । तं जहा—अगारधम्मं अणगारधम्मं च । अणगारधम्मो ताव इह खलु सव्वओ सव्वत्ताए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइयस्स सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं मुसावाय--अदिण्णादाण-मेहुण--परिग्गह-राइ-भोयणाओ वेरमणं । अयमाउसो ! अणगारसामाइए धम्मे पण्णत्ते, एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्ठिए णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवति ।

अगारधम्मं दुवालसविहं आइक्खइ तं जहा—पंच अणुव्वयाइं, तिण्णि गुणव्वयाइं, चत्तारि सिक्खावयाइं ।

पंच अणुव्वयाइं । तं जहा—

१ थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं ।

२ थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं ।

३ थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं ।

४ सदारसंतोसे । ५ इच्छा-परिमाणे ।

तिण्णि गुणव्वयाइं । तं जहा—६ दिसिव्वयं, ७ उवभोग परिभोग-परिमाणं । ८ अणत्थदंडवेरमणं; चत्तारि सिक्खावयाइं । तं जहा—९ सामाइयं, १० देसावयासियं, ११ पोसहोववासे, १२ अतिहिसंविभागे ।

धर्माराधना

श्रमण भगवान् महावीर ने दो प्रकार का धर्म कहा है:— एक अगार-धर्म और दूसरा अनगार-धर्म। सर्वतः और सर्वथा मुण्डित होकर, गृहस्थाश्रम से निकल कर अनगार-धर्म में प्रव्रजित होकर सब प्रकार के प्राणातिपात से निवृत्त होना, मृषावाद-अदत्तादान-मैथुन-परिग्रह और रात्रि भोजन से सर्वथा निवृत्त होना अनगार धर्म कहा गया है। हे आयुष्मन्! यह अनगार-सामायिक धर्म कहा गया है। इस धर्म की शिक्षा (ग्रहण और आसेवन) में उपस्थित हुए साधु अथवा साध्वी सम्यक् विचरण करते हुए आज्ञा के आराधक होते हैं।

अगार धर्म (श्रावक धर्म) बारह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है:—पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत।

पाँच अणुव्रत इस प्रकार कहे गये हैं:—

१ स्थूल प्राणातिपात से (हिंसा से) निवृत्त होना.
२ स्थूल मृषावाद से निवृत्त होना.
३ स्थूल अदत्तादान से निवृत्त होना.
४ स्वपत्नी-संतोष.
५ इच्छा-परिमाण.

तीन गुणव्रत इस प्रकार कहे गये हैं:—६ दिशाव्रत, ७ उपभोग परिभोग-परिमाण व्रत और ८ अनर्थदण्ड से निवृत्त होना। चार शिक्षाव्रत इस प्रकार हैं:—९ सामायिक व्रत, १० देशावकाशिकव्रत, ११ पौषधोपवास व्रत और १२ अतिथि-संविभाग व्रत।

अपच्छिम-मारणंतिया संलेहणा झूसणाराहणा। अयमाउसो ! अगारसामाइए धम्मे पण्णत्ते। एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्ठिए समणोवासए वा समणोवासिया वा विहरमाणे आणाए आराहए भवइ॥

—औपपातिक सूत्र
सूत्र ५—७

चत्तारि परमंगाणि

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं॥ १॥
समावन्नाण संसारे, नाणागोत्तासु जाइसु।
कम्मा नाणाविहा कट्टु, पुढो विस्संभिया पया॥ २॥
एगया देवलोएसु, नरएसु वि एगया।
एगया आसुरं कायं, अहाकम्मेहिं गच्छइ॥ ३॥
एगया खत्तिओ होइ, तओ चंडाल—बुक्कसो।
तओ कीड पयंगो य, तओ कुंथु-पिवीलिया॥ ४॥
एवमावट्टजोणिसु, पाणिणो कम्मकिव्विसा।
न निव्विजंति संसारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया॥ ५॥

अन्तिम समय में मारणान्तिक संलेखना (तप विशेष) झूषणा की आराधना करना। हे आयुष्मन्! यह अगार सामायिक धर्म कहा गया है। इस धर्म की शिक्षा (ग्रहण और आसेवन) में उपस्थित श्रमणोपासक या श्रमणोपासिका सम्यक् आचरण करते हुए आज्ञा के आराधक होते हैं।

—औपपातिक सूत्र

चार श्रेष्ठतम अङ्ग

(१) इस संसार में परिभ्रमण करते हुए प्राणी को चार श्रेष्ठतम अंगों की प्राप्ति होना सुदुर्लभ है। वे चार अंग इस प्रकार हैं—१ मनुष्यत्व २ धर्मश्रवण ३ श्रद्धा और ४ संयम में पराक्रम करना।

(२) संसार प्राप्त जीवों ने विविध गोत्रों और जातियों में विविध प्रकार के कर्मों के फलस्वरूप जन्म-धारण किया है। विविध जन्म-मरणों के द्वारा इस जीव ने लोक को सम्पूर्ण भर दिया है अर्थात् इसने अनन्त जन्म-मरण किये हैं।

(३) जीव अपने कर्मों के अनुसार कभी देवलोक में उत्पन्न होता है, तो कभी नरक में पैदा होता है और कभी भवनपति देवों में जन्म धारण करता है।

(४) कभी यह क्षत्रिय कुल में जन्म लेता है, कभी चांडाल और वर्ण शंकर होता है, कभी कीड़े-पतंगे की योनि धारण करता है और कभी कुन्थु और कीड़ी-मकौड़े की जाति में जन्म लेता है।

कम्मसंगेहिं संमूढा, दुक्खिया बहुवेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मंति पाणिणो ॥ ६ ॥

कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययंति मणुस्सयं ॥ ७ ॥

माणुस्सविग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं ॥ ८ ॥

आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परमदुल्लहा ।
सोच्चा नेयाउयं मग्गं, बहवे परिभस्सए ॥ ९ ॥

सुइं च लद्धुं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं ।
बहवे रोयमाणा वि, नो य णं पडिवज्जए ॥ १० ॥

माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्दहे ।
तवस्सी वीरियं लद्धुं, संवुडे निद्धुणे रयं ॥ ११ ॥

सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ ।
निव्वाणं परमं जाइ, घयसित्ते व पावए ॥ १२ ॥

विगिंच कम्मणो हेउं, जसं संचिणु खंतिए ।
सरीरं पाढवं हिच्चा, उड्ढं पक्कमई दिसं ॥ १३ ॥

(६) कर्मों के संग से मूढ़ बने हुए, दुखी और विपुल वेदना वाले प्राणी अमानुषिक योनियों में विविध प्रकार से कष्ट पाते हैं।

(७) इस तरह क्रमशः दुःख सहन करने से कर्मों की हानि होने के कारण जीव शुद्धि प्राप्त होने पर मनुष्य-भव में जन्म धारण करते हैं।

(८) मनुष्य का शरीर (भव) प्राप्त हो जाने पर भी ऐसे धर्म-श्रवण का अवसर मिलना बड़ा कठिन है, जिसे सुनकर तप, क्षमा और अहिंसा को स्वीकार किया जा सके।

(९) कदाचित् धर्म-श्रवण का अवसर प्राप्त हो गया तो उस पर श्रद्धा होना परम दुर्लभ है। न्याय मार्ग का श्रवण करने पर भी बहुत से प्राणी भ्रष्ट हो जाते हैं।

(१०) धर्मश्रुति और धर्म–श्रद्धा हो जाने पर भी उसके अनुसार पुरुषार्थ करना परम दुर्लभ है। क्योंकि बहुत से प्राणी धर्म पर रुचि रखते हुए भी उसे अंगीकार नहीं करते हैं।

(११) मनुष्य भव में आकर, धर्म को सुनकर जो उस पर श्रद्धा करता है और उसके अनुसार पराक्रम करता है वह तपस्वी और संयमी कर्म रूपी रज-मैल को नष्ट कर देता है।

(१२) जो ऋजु—कपट-रहित और सरल होता है उसकी शुद्धि होती है। जो शुद्ध होता है वहीं धर्म रह सकता है। जैसे घी से सिञ्ची हुई अग्नि ऊर्ध्वगामी होती है वैसे ही वह शुद्ध धर्मात्मा परम निर्वाण को प्राप्त होता है।

(१३) कर्म के कारणों को नष्ट करके, क्षमा के द्वारा यश का संचय करो। ऐसे जीव पार्थिव शरीर को छोड़कर सकल-कर्म नष्ट होने पर मोक्ष में और कर्म शेष रह जाने पर देवलोक में जाते हैं।

चउरंगं दुल्लहं मत्ता, संजमं पडिवज्जिया ।
तवसा धुयकम्मंसे सिद्धे, हवइ सासए ॥ १४ ॥

पुज्जो

सक्का सहेउं आसाइ कंटया अओमया उच्छहया नरेण ।
अणासए जो उ सहेज्ज कंटए वईमए कण्णसरे स पुज्जो ॥
समावयंता वयणाभिघाया कण्णं गया दुम्मणियं जणंति ।
धम्मो त्ति किच्चा परमग्गसूरे जिइंदिए जो सहइ स पुज्जो ॥
अलोलुए अक्कुहए अमाई अपिसुणे यावि अदीणवित्ती ।
नो भावए नो वि य भावियप्पा अकोउहल्ले य सया स पुज्जो ॥
गुणेहि साहू अगुणेहि असाहू गिण्हाहि साहू गुण मुञ्चऽसाहू ।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ॥
तेसिं गुरूणं गुणसायराणं सोच्चाण मेहावी सुभासियाइं ।
चरे मुणी पंचरए तिगुत्तो चउक्कसायावगए स पुज्जो ॥

(१४) इन चार अंगों को दुर्लभ जानकर, संयम को अंगीकार करके और तप के द्वारा कर्मांश को नष्ट करके जीव शाश्वत सिद्ध हो जाता है।

पूज्य कौन ?

१ आशा के वशीभूत होकर मनुष्य लोहमय काँटों को उत्साह पूर्वक सहन कर सकता है परन्तु जो किसी प्रकार की आशा रखे बिना कान में बाण के समान लगने वाले वचन रूपी काँटों को सहन करता है, वह पूज्य है।

२ एकत्रित होकर सन्मुख आते हुए वचन रूपी प्रहार कर्ण-प्राप्त होकर हृदय में खिन्नता उत्पन्न करते हैं परन्तु जो श्रेष्ठ अग्रगण्य शूरवीर और जितेन्द्रिय प्राणी धर्म समझ कर इन्हें सहन करता है, वह पूज्य है।

३ जो लोलुपता रहित है, जो इन्द्रजालादि से रहित है, जो माया रहित है, जो चुगलखोर नहीं है, जो दीनता बताने वाला नहीं है, जो दूसरों से अपनी प्रशंसा नहीं करवाता है, जो दूसरों के सामने अपनी प्रशंसा नहीं करता है और जो कुतूहल से रहित है, वह पूज्य है।

(४) गुणों के द्वारा ही साधु होता है और अगुणों (दोषों) से असाधु होता है इसलिए साधु के गुणों को ग्रहण करो और असाधुता को छोड़ो। जो व्यक्ति इस प्रकार स्वयं अपनी आत्मा को समझाता है और जो रागद्वेष में (रागद्वेष के कारणों में भी) समभाव रखता है, वह पूज्य है।

(५) गुणों के सागर गुरुदेव के सुभाषित वचनों को सुनकर जो मुनि पंच महाव्रतों में लीन होकर विचरता है, तीन गुप्तियों से गुप्त होता है और चार कषायों से मुक्त होता है, वह पूज्य है।

भिक्खू

रोइए नायपुत्तवयए अप्पसमे मन्नेज्ज छप्पि काए।
पंच य फासे महव्वयाइं पंचासवसंवरे जे स भिक्खू ॥१॥

चत्तारि वमे सया कसाए धुवजोगी य हविज्ज बुद्धवयणे।
अहणे निज्जायरूव-रयए गिहिजोगं परिवज्जए जे स भिक्खू २

समदिट्ठी सया अमूढे अत्थि हु नाणे तव-संजमे य।
तवसा धुणइ पुराण-पावगं मण-वय-कायसुसंवुडे जे स भिक्खू।

जो सहइ हु गामकंटए अक्कोस-पहार-तज्जणाओ य।
भय-भेरव-सद्द सप्पहासे समसुहदुक्खसहे जे स भिक्खू ॥४॥

हत्थसंजए पायसंजए कायसंजए संजइंदिए।
अज्झप्परए सुसमाहि-अप्पा सुत्तत्थं च वियाणइ जे स भिक्खू।

भिक्षु कौन ?

(१) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के वचनों में रुचि रख कर जो षट्काय के जीवों को अपनी आत्मा के समान समझता है, जो पाँच महाव्रतों का पालन करता है और पाँच आस्रवों को रोकता है, वह भिक्षु है।

(२) जो क्रोधादि चार कषायों को छोड़ता है, जो तीर्थङ्कर के वचनों में निश्चल योग वाला होता है, जो धन रहित है, जो सोना-चाँदी आदि को छोड़ चुका है तथा जो गृहस्थ के साथ ममत्व पूर्ण सम्बन्ध नहीं रखता है, वह भिक्षु है।

(३) जो सम्यग्दृष्टि जीव किस प्रकार की शंका और भीति से मूढ न बन कर यह मानता है कि ज्ञान, तप और संयम (हितकारी) है, ऐसा मानकर जो तपस्या के द्वारा पुराने कर्मों को नष्ट करता है और जो मन-वचन और काया को अशुभ प्रवृत्ति से रोकने वाला है, वह भिक्षु है।

उवहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे अन्नायउंछं पुलनिप्पुलाए ।
कयविक्कयसंनिहिओ विरए सव्वसंगावगए य जे स भिक्खू ।
न जाइमत्ते न य रूवमत्ते न लाभमत्ते न सुएण मत्ते ।
मयाणि सव्वाणि विवज्जयंतो धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू ।
पवेयए अज्जपयं महामुणी धम्मे ठिओ ठावयई परं पि ।
निक्खम्म वज्जेज्ज कुसीललिंगं न यावि हासं कुहए स भिक्खू ।
तं देहवासं असुइं असासयं सया चए निच्चहियट्ठियप्पा ।
छिंदित्तु जाइमरणस्स बंधणं उवेइ भिक्खू अपुणागमं गई ।

णेमि-रहणेमिज्जं

'सोरयपुरम्मि' नयरे आसि राया महड्ढिए ।
वसुदेवुत्ति नामेणं राय-लक्खण-संजुए ॥१॥
तस्स भज्जा दुवे आसी रोहिणी देवई तहा ।
तासि दोण्हं दुवे पुत्ता इट्ठा राम-केसवा ॥२॥
सोरियपुरम्मि नयरे आसी राया महड्ढिए ।
'समुद्दविजए' नामं राय-लक्खण-संजुए ॥३॥

(६) जो व्यक्ति वस्त्र-पात्रादि उपधि में ममत्व नहीं रखता है, आसक्त नहीं होता है, अज्ञात–बिना परिचय के कुलों में भिक्षा के लिए जाता है, संयम को निस्सार बनाने वाले दोषों से दूर रहता है, क्रय-विक्रय और संग्रह से अलग रहता है तथा जो सब प्रकार के संगों से मुक्त है, वह भिक्षु है।

(७) जो जाति का अभिमान नहीं करता, रूप का अभिमान नहीं करता, लाभ का अभिमान नहीं करता, ज्ञान का अभिमान नहीं करता, जो सब प्रकार के अभिमानों का त्याग करके धर्मध्यान में लीन रहता है, वह भिक्षु है।

(८) जो महामुनि (परोपकार के लिए) शुद्ध धर्म का उपदेश देता है, जो स्वयं धर्म में स्थित होता है और दूसरों को भी धर्म में स्थित करता है, जो प्रव्रज्या लेकर आरम्भ आदि कुशील लिंग—चेष्टा को छोड़ता है तथा उपहास और कुचेष्टाओं से दूर रहता है, वह भिक्षु है।

(९) सदा हित–सम्यग्दर्शनादि में अपनी आत्मा को स्थित रखने वाला मुनि, अपवित्र और अनित्य देह के ममत्व को सदा छोड़ता है और जन्म-मरण के बन्धन को छेद कर वह भिक्षु सिद्ध गति को प्राप्त करता है जहाँ से पुनः आगमन नहीं होता।

नेमि–रथनेमि

(१) शौर्यपुर नगर में राजा के लक्षण से सम्पन्न वसुदेव नाम के महाऋद्धि वाले राजा थे।

(२) उनके दो पत्नियाँ थीं। उनका नाम रोहिणी और देवकी था। उन दोनों के राम और केशव नाम के दो प्रिय पुत्र थे।

(३) शौर्यपुर नगर में राज-लक्षण सम्पन्न समुद्रविजय नाम के महर्द्धिक राजा थे।

तस्स भज्जा 'सिवा' नाम तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं 'अरिट्ठनेमि' त्ति लोगनाहे दमीसरे ॥४॥
सोऽरिट्ठनेमि नामो उ लक्खणस्सरसंजुओ ।
अट्ठसहस्स लक्खणधरो गोयमो कालगच्छवी ॥५॥
वज्जरिसहसंघयणो समचउरंसो झसोयरो ।
तस्स राइमईकन्नं जायई केसवो ॥६॥
अह सा रायवरकन्ना सुसीला चारुपेहणी ।
सव्वलक्खणसंपन्ना विज्जुसोयामणिप्पभा ॥७॥
अहाह जणओ तीसे वासुदेवं महिड्ढियं ।
इहागच्छउ कुमारो जा से कन्नं ददामि हं ॥८॥
सव्वोसहिहिं एहविओ कय-कोउयमंगलो ।
दिव्वजुयलपरिहिओ आभरणेहिं विभूसिओ ॥९॥
मत्तं च गंधहत्थिं वासुदेवस्स जेट्ठगं ।
आरूढो सोहए अहियं सिरे चूडामणी जहा ॥१०॥
अह ऊसिएण छत्तेण चामराहि य सोहिए ।
दसार-चक्केण य सो सव्वओ परिवारिओ ॥११॥

(४) उनके 'शिवा' नाम की पत्नी थी। उनके अरिष्टनेमि नामक महायशस्वी पुत्र था। वे अरिष्टनेमि भगवान् लोक के नाथ और इन्द्रियों का दमन करने वालों में ईश्वर तुल्य थे।

(५) वे अरिष्टनेमि उत्तम लक्षण और सुस्वर से युक्त थे और एक हजार आठ उत्तम लक्षणों को धारण करने वाले थे। वे गौतम गोत्र के थे और उनके शरीर का वर्ण श्याम था।

(६) वज्रऋषभ नाराच संहनन (दृढ शरीर) वाले और समचतुरस्र संस्थान (चारों तरफ से जिस शरीर की आकृति समान हो) वाले थे। उनका पेट मछली के समान रमणीय था। उन अरिष्टनेमि के साथ विवाह के लिए केशव (कृष्ण) ने राजीमती कन्या की माँग की।

(७) वह राजीमती कन्या उत्तम कुल के राजा उग्रसेन की पुत्री थी। वह सुशीला, सुनयना और स्त्रियों के सर्वोत्तम लक्षणों से सम्पन्न थी। उसकी कान्ति बिजली के समान तेजस्वी और मनोहर थी।

(८) उस राजीमती कन्या के पिता ने विपुल ऋद्धि वाले वासुदेव को कहलाया कि यदि (नेमिनाथ) कुमार यहाँ विवाह के लिए पधारें तो मैं कन्या दे सकता हूँ।

(९) नेमिनाथ को उत्तम प्रकार की औषधियों से स्नान कराया, मंगल कार्यों के साथ तिलक आदि किया, उत्तम प्रकार के वस्त्र पहनाये और उत्तम आभूषणों से विभूषित किया।

(१०) वासुदेव राजा के सब से बड़े मदोन्मत्त गंध-हस्ति पर वे आरूढ हुए। जिस प्रकार मस्तक पर चूडामणि शोभा देता है उस तरह वे हाथी पर शोभा देने लगे।

(११) उनके ऊपर उत्तम छत्र और दो चँवर ढुल रहे थे, और वे दस दशार्ह आदि यादव परिवार से चारों ओर घिरे हुए थे।

चउरंगिणीए सेणाए रइयाए जहक्कमं ।
तुरियाण संनिनाएण दिव्वेण गयणं फुसे ॥१२॥

एयारिसाए इड्ढिए जुत्तीए उत्तमाइ य ।
नियगाओ भवणाओ निज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥१३

अह सो तत्थ निज्जंतो दिस्स-पाणे भयद्दुए ।
वाडेहिं पंजरेहिं च सन्निरुद्धे सुदुक्खिए ॥ १४

जीवियं तं तु संपत्ते मंसट्ठा भक्खियव्वए ।
पासित्ता से महापन्ने सारहिं इणमब्बवी ॥१५॥

कस्स अट्ठा इमे पाणा एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडेहिं पंजरेहिं च सन्निरुद्धा य अच्छहिं ? ॥१६॥

अह सारही तओ भणइ एए भद्दा उ पाणिणो ।
तुज्झ विवाहकज्जम्मि भोयावेउं बहुं जणं ॥१७॥

सोऊण तस्स वयणं बहुपाणिविणासणं ।
चिंतेइ से महापन्नो साणुक्कोसे जिए हिऊ ॥१८॥

जइ मज्झ कारणा एए हम्मंति सुबहू जिया ।
न मे एयं तु निस्सेसं परलोगे भविस्सइ ॥१९॥

(१२) उनके साथ हाथी-घोड़ा-रथ और पैदल—यों चार प्रकार की क्रमशः सुव्यवस्थित सेना थी। उस समय विविध वाद्यों की दिव्य ध्वनि से आकाश-मण्डल गूँज रहा था।

(१३) इस प्रकार सर्वोत्तम समृद्धि और शरीर की उत्तम कान्ति से सुशोभित यादवकुल के आभूषण रूप नेमिकुमार अपने भवन से (विवाह के लिए) बाहर निकले।

(१४) (श्वसुरगृह में लग्न मण्डप के पास पहुँचने के पूर्व) मार्ग में जाते-जाते वाड़ों और पिंजरों में बँधे हुए दुखी और मरण के भय से त्रास पाते हुए प्राणियों को उन्होंने देखा।

(१५) मांस भक्षण करने के लिए घेरे गये और मृत्यु के समीप पहुँचे हुए उन प्राणियों को देखकर उन बुद्धिमान् नेमि-कुमार ने सारथी से ऐसा कहा।

(१६) सुख के अभिलाषी ये सब प्राणी किसलिए वाड़ों और पिंजरों में रोक कर रक्खे गये हैं ?

(१७) तब सारथी ने कहा—ये सब निर्दोष जीव आपके विवाह-कार्य में आये हुए बहुत से लोगों को भोजन कराने के लिए रोक कर रक्खे गये हैं।

(१८) "आपके विवाह के लिए बहुत जीवों का विनाश!" सारथी के ये वचन सुनकर सब जीवों पर अनुकम्पा करने वाले महा बुद्धिमान नेमिकुमार ऐसा विचारने लगे:—

सो कुंडलाण जुयलं सुत्तगं च महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि सारहिस्स पणामए ॥२०॥

मणपरिणामो य कओ देवा य जहोइयं समोइण्णा ।
सव्वड्ढीए सपरिसा निक्खमणं तस्स काउं जे ॥२१॥

देव-मणुस्सपरिव्वुडो सीयारयणं तओ समारूढो ।
निक्खमिय बारगाओ 'रेवयम्मि' ठिओ भगवं ॥२२॥

उज्जाणं संपत्तो ओइण्णो उत्तमाउ सीयाओ ।
साहस्सीइ परिव्वुडो अह निक्खमइ उ चित्ताहिं ॥२३॥

अह से सुगंधगंधीए तुरियं मउकुंचिए ।
सयमेव लुंचइ केसे पंचमुट्ठीहिं समाहिओ ॥२४॥

वासुदेवो य णं भणइ लुत्तकेसं जिइंदियं ।
इच्छियमणोरहं तुरियं पावसु तं दमीसरा ॥२५॥

नाणेणं दंसणेणं च चरित्तेण तहेव य ।
खंतीए मुत्तीए वड्ढमाणो भवाहि य ॥२६॥

एवं ते राम-केसवा दसारा य बहू जणा ।
अरिट्ठनेमिं वंदित्ता अभिगया बारगापुरिं ॥२७॥

(२०) महायशस्वी नेमिकुमार ने कुण्डल-युगल, और सूत्रक तथा सब आभूषण सारथी को दे दिये (और वहाँ से ही वापस लौट गये।)

(२१) नेमिकुमार ने (घर आने पर) संयम अङ्गीकार करने का जैसे ही विचार किया वैसे ही उनका निष्क्रमण महोत्सव करने के लिए (लोकान्तिक) देव दिव्यऋद्धि और पर्षद् के सहित मनुष्य लोक में आये।

(२२) देव और मनुष्यों से घिरे हुए नेमीश्वर भगवान् शिविका रत्न (श्रेष्ठ पालखी) पर आरूढ होकर द्वारिका नगरी से निकल कर रैवतक (गिरनार) पर्वत पर (आये हुए उद्यान में) स्थित हुए।

(२३) उद्यान में पहुँचने पर वे उत्तम पालखी से नीचे उतरे और एक हजार पुरुषों के साथ चित्रा नक्षत्र में उन्होंने प्रव्रज्या अङ्गीकार की।

(२४) प्रव्रज्या लेते समय उन्होंने सुगन्धमय, सुकोमल और कुञ्चित (घुंघराले) केशों का शीघ्र अपने हाथों से पञ्चमुष्टिक लोच किया और समाधिपूर्वक संयम अङ्गीकार किया।

(२५) वासुदेव ने जितेन्द्रिय और मुण्डित हुए मुनीश्वर से कहा कि—हे दमीश्वर! आप शीघ्र ही अपना इच्छित मनोरथ (मुक्ति) प्राप्त करें।

(२६) ज्ञान, दर्शन और चारित्र से तथा क्षमा और निर्लोभता आदि गुणों से सदा आगे और आगे बढ़े।

(२७) इस तरह राम (बलभद्र), केशव (कृष्ण), यादव और दूसरे नागरिक अरिष्टनेमि को वन्दन कर पीछे द्वारिका नगरी में आये।

सोऊण रायकन्ना पव्वज्जं सा जिणस्स उ ।
नीरासा य निराणंदा सोगेण उ समुत्थिया ॥२८॥

राईमई विचिंतेइ धिरत्थु मम जीवियं ।
जा हं तेण परिचत्ता सेयं पव्वइउं मम ॥२९॥

अह सा भमरसन्निभे कुच्चफणगपासिए ।
सयमेव लुंचइ केसे धिइमंता ववस्सिया ॥३०॥

वासुदेवो य णं भणइ लुत्तकेसं जिइंदियं ।
संसारसागरं घोरं तर कन्ने ! लहुं लहुं ॥३१॥

सा पव्वइया संती पव्वावेसी तहिं बहुं ।
सयणं परियणं चेव सीलवंता बहुस्सुया ॥३२॥

गिरिं रेवतयं जंती वासेणुल्ला उ अंतरा ।
वासंते अंधयारंमि अंतो लयणस्स ठिया ॥३३॥

चीवराइं विसारंती जहा जायत्ति पासिया ।
रहनेमी भग्गचित्तो पच्छा दिट्ठो य तीइऽवि ॥३४॥

(२८) इधर राजकन्या राजीमती ने जब अरिष्टनेमि भगवान् के दीक्षा ले लेने की बात सुनी तब वह निराश, आनन्द रहित हुई और शोक से भूमि पर गिर पड़ी।

(२९) (स्वस्थ होने के बाद) राजीमती सोचने लगी कि जिन्होंने मेरा त्याग किया वे राजपाट सुख-वैभव छोड़कर योगी बने और मैं यहीं हूँ? मेरे जीवन को धिक्कार है! मुझे दीक्षा धारण करना ही श्रेयस्कर है।

(३०) इसके बाद वह धैर्यवती भ्रमर के समान काले और मृदु कंघी से ओंछे हुए बालों का स्वयं लोच कर योगिनी (साध्वी) बन गई।

(३१) मुण्डित और जितेन्द्रिय राजीमती को कृष्ण वासुदेव ने कहा—हे पुत्रि! इस भयंकर संसार-सागर को शीघ्र-शीघ्र पार करना।

(३२) जब राजीमती दीक्षित हुई तो उसके साथ अनेक सहेलियाँ और सेविकाओं ने दीक्षा धारण की। वे सब ज्ञान का अभ्यास करती हुई चारित्र का पालन करने लगीं।

(३३) एक बार गिरनार पर्वत पर जाते हुए मार्ग में वृष्टि होने से राजीमती के वस्त्र गीले हो गये। वह अन्धकार होने से पास की एक गुफा में जाकर स्थित हुई।

भीया य सा तहिं दट्ठु एगंते संजयं तयं ।
बाहाहिं काउं संगोप्फं वेवमाणी निसीयइ ॥३५॥

अह सोऽवि रायपुत्तो समुद्दविजयंगओ ।
भीयं पवेवियं दट्ठु इमं वक्कं उदाहरे ॥३६॥

रहनेमी अहं भद्दे ! सुरूवे ! चारुभासिणि ! ।
ममं भयाहि सुयणु न ते पीला भविस्सइ ॥३७॥

एहि ता भुंजिमो भोए माणुस्सं खु सुदुल्लहं ।
भुत्तभोगी तओ पच्छा जिणमग्गं चरिस्सामो ॥३८॥

दट्ठूण रहनेमिं तं भग्गुज्जोयपराजियं ।
राईमई असंभंता अप्पाणं संवरे तहिं ॥३९॥

अह सा रायवरकन्ना सुट्ठिया नियमव्वये ।
जाई कुलं च सीलं च रक्खमाणी तयं वए ॥४०॥

जइ सि रूवेण वेसमणो ललिएण नलकुव्वरो ।
तहाऽसि ते न इच्छामि जइ सि सक्खं पुरंदरो ॥४१॥

धिरत्थु तेऽजसोकामी जो तं जीवियकारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं सेयं ते मरणं भवे ॥४२॥

(३५) एकान्त में उस संयमी को देखकर वह सहसा डरी। अपनी बाहुओं से शरीर का गोपन कर भय से काँपती हुई बैठ गई।

(३६) उस समय समुद्रविजय के पुत्र राजपुत्र रथनेमि राजमती को भयभीत बनी हुई और काँपती हुई देखकर इस प्रकार बोले:—

(३७) हे सरले! मैं रथनेमि हूँ। हे रूपवति! हे मंजुल-भाषिणि! मुझे अंगीकार करो। हे कोमलाङ्गी! तुम्हें कुछ भी दुःख नहीं होगा।

(३८) यह मनुष्य-भव दुर्लभ है इसलिए आओ! हम भोग भोगें। भोग भोग लेने के बाद अपन दोनों पुनः जिनमार्ग का आचरण करेंगे (संयम ले लेंगे।)

(३९) इस प्रकार संयम में कायर और विकार जीतने के उद्योग में पराजित हुए रथनेमि को देख कर राजीमती स्वस्थ हुई और विक्षुब्ध न होकर शरीर को वस्त्रों से आच्छादित किया।

(४०) वह राजीमती राजकन्या अपने नियम और व्रत में दृढ़ रहकर जाति, कुल और शील की रक्षा करती हुई रथनेमि को इस प्रकार कहने लगी:—

(४१) यदि तुम रूप में साक्षात् कामदेव भी क्यों न हो, लीला में साक्षात् नलकुबेर भी क्यों न हो, यदि तुम साक्षात् शक्रेन्द्र भी क्यों न हो, मैं तुम्हारी इच्छा नहीं करती।

(४२) हे अपयश के अभिलाषी! तुम्हें धिक्कार है, जो तुम वासनामय जीवन के लिए वमन किये हुए भोगों को भोगने की इच्छा करते हो। ऐसे पतित जीवन से तो तुम्हारा मर जाना अधिक उत्तम है।

अहं च भोगराजस्स, तं च सि अंधगवण्हिणो ।
मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर ॥४३॥

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ ।
वाया-विद्धो व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥४४॥

गोवालो भंडवालो वा, जहा तद्दव्वणीसरो ।
एवं अणिस्सरं तं पि, सामण्णस्स भविस्ससि ॥४५॥

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाए सुभासियं ।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥४६॥

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ ।
सामण्णं निच्चलं फासे, जावज्जीवं दढव्वओ ॥४७॥

उग्गं तवं चरित्ताणं, जाया दोण्णि वि केवली ।
सव्वं कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥४८॥

(४३) मैं भोजकविष्णु की पौत्री और उग्रसेन की पुत्री हूँ और तुम अंधकविष्णु के पौत्र और समुद्रविजय के पुत्र हो। हम गन्धन कुल के सर्प के समान वमन किये हुए को भोगने वाले न हों! हे संयमीश्वर! संयम में निश्चल बनो!

(४४) हे मुनि! जिन-जिन स्त्रियों को देखोगे और उन्हें देखकर कामभोग की इच्छा करोगे तो समुद्र के किनारे रहे हुए 'हड' वृक्ष की तरह तुम्हारी आत्मा अस्थिर हो जायगी। (अतः तुम्हारा पतन हो जायगा।)

(४५) जिस प्रकार ग्वाला गायों का स्वामी नहीं और भण्डारी भण्डार का स्वामी नहीं होता इसी तरह यदि तुम भी विषय की अभिलाषा करते रहोगे तो चारित्र के स्वामी न होकर केवल वेश के स्वामी रह जाओगे।

(इसलिए हे रथनेमि! क्रोध, मान, माया, और लोभ को दबा कर, इन्द्रियों को वश में रखकर तुम्हारी आत्मा को काम-भोगों से निवृत्त करो।)

(४६) ब्रह्मचारिणी साध्वी के ऐसे आत्मस्पर्शी सुभाषित वचनों को सुनकर रथनेमि धर्म में उसी तरह स्थिर हो गये जैसे मदोन्मत्त हाथी अंकुश से वश में हो जाता है।

(४७) तब से रथनेमि मन, वचन और काया से सुसंयमी और जितेन्द्रिय बन गये। वे जीवन पर्यन्त अपने व्रत में अखण्ड रहे और चारित्र का निश्चलता से पालन करते रहे।

(४८) उग्र तप का आचरण कर रथनेमि और राजीमती दोनों केवली हो गये और सब कर्मों का क्षय करके दोनों उत्तम सिद्धगति को प्राप्त हुए।

एवं करेंति संबुद्धा पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु जहा सो पुरिसोत्तमो ॥४६॥

सद्दालपुत्ते कुंभकारे

पोलासपुरे नाम नयरे । सहस्संबवणो नाम उज्जाणे । जियसत्तू राया ।

तत्थ णं पोलासपुरे नयरे सद्दालपुत्ते नाम कुंभकारे आजीविओवासए परिवसइ । आजीवियसमयंसि लद्धट्ठे गहियट्ठे पुच्छियट्ठे विणिच्छियट्ठे अभिगयट्ठे अट्ठिमिंज-पेम्माणुरागरत्ते य ।

अयमाउसो ! आजीवियसमए अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे त्ति आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीवियोवासगस्स एक्का हिरण्णकोडी निहाणपउत्ता, एक्का वड्ढिपउत्ता, एक्का पवित्थरपउत्ता, एक्के वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं ।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स अग्गि-मित्ता नामं भारिया होत्था ।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पोलास-पुरस्स नगरस्स बहिया पंच कुंभकारावणसया होत्था ।

(४९) जिस प्रकार पुरुषोत्तम रथनेमि ने विषय-भोग से अपना मन हटाया इसी तरह पण्डित, विचक्षण और तत्त्वज्ञ पुरुष भी भोगों से निवृत्त होकर परम पुरुषार्थ करें।

सकडालपुत्र कुम्भकार

पोलासपुर नामका नगर था। वहाँ सहस्राम्रवन नामका उद्यान था। वहाँ जितशत्रु नामक राजा था।

उस पोलासपुर नगर में सकडाल पुत्र नाम का कुम्भकार रहता था। वह आजीविकमत का उपासक था। वह आजीविक सिद्धान्त में लब्धार्थ, गृहीतार्थ, पृष्टार्थ, विनिश्चितार्थ और ज्ञातार्थ था। आजीविक-सिद्धान्त के प्रति उसकी रग-रग में अनुराग भरा हुआ था। वह मानता था कि—

"हे आयुष्मन्! यह आजीविक सिद्धान्त ही परमार्थ है, और शेष सब अनर्थ हैं।"

इस तरह आजीविक सिद्धान्त से आत्मा को भावित करता हुआ वह रहता था।

उस आजीविकोपासक सकडालपुत्र के पास एक क्रोड़ सौनैये का धन खजाने में, एक क्रोड़ सौनैये का धन व्यापार में और एक क्रोड़ सौनैये का धन गृहसामग्रियों के रूप में था। उसके अतिरिक्त उसके पास दस हजार गायों का एक व्रज था।

उस आजीविकोपासक सकडाल के अग्निमित्रा नाम की स्त्री थी।

उस आजीविकोपासक सकडालपुत्र के पोलासपुर नगर के बाहर पाँच सौ मिट्टी के बर्तनों की दुकाने थीं।

तत्थ णं बहवे पुरिसा दिएणभइभत्तवेयणा कल्लाकल्लिं बहवे करए य वारए य पिहडए य घडए य अद्धघडए य कलसए य अलिंजरए य जंबूलए य उट्टियाओ य करेंति, अन्ने य से बहवे पुरिसा दिएणभइभत्तवेयणा कल्लाकल्लिं तहिं बहूहिं करएहिं य·· ··········जाव उट्टियाहि य रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अन्नया कयाइ पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियं धम्मपएणत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए। परिसा निग्गया। जियसत्तू निग्गच्छइ। निग्गच्छित्ता पज्जुवासइ।

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता पज्जुवासइ।

उनमें अनेक मनुष्यों को वेतन देकर काम के लिए रख रक्खे थे। वे प्रतिदिन बहुत से करक, वारक, पीहड, घट, अर्धघट कलश, अलिंजर, जम्बूल, और उष्ट्रिकाएँ इत्यादि बनाते थे, और दूसरे बहुत से वेतन लेकर काम करने वाले पुरुष उन्हें राज-मार्ग में बेचते थे और अपना निर्वाह करते थे।

किसी समय वह मध्याह्न में आजीविकोपासक सकडालपुत्र अपनी अशोक-वाटिका में जाता है और वहाँ जाकर मंखलिपुत्र गोशालक की धर्मप्रज्ञप्ति को अङ्गीकार करता हुआ विचरता है।

उस काल, उस समय में श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे। परिषद् वन्दन के लिए निकली। जितशत्रु राजा भी दर्शन के लिए जाता है और भगवान् की पर्युपासना करता है।

आजीविकोपासक सकडालपुत्र भी यह बात जानकर भगवान् महावीर के समीप जाता है और तीन बार दक्षिण ओर से प्रदक्षिणा करके वन्दन और नमस्कार करता हुआ सेवाभक्ति करता है।

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तीसे य महइ महालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ।

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अन्नया कयाइ वायाहययं कोलालभंडं अंतो सालाहिंतो बहिया नीणेइ, नीणित्ता आयवंसि दलयइ।

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासीः—

"सद्दालपुत्ता! एस णं कोलालभण्डे कओ?"

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासीः—

"एस णं भंते! पुव्विं मट्टिया आसी, तओ पच्छा उदएणं निमिज्जइ, निमिज्जित्ता छारेण य करिसेण य एगयओ मीसिज्जइ, मीसिज्जित्ता चक्के आरोहिज्जइ, तओ बहवे करगा य घडगा य उट्टियाओ य कज्जंति।"

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासीः—

श्रमण भगवान् महावीर ने आजीविकोपासक सकडाल-पुत्र और उस महती पर्षदा को धर्मोपदेश दिया।

किसी समय वह आजीविकोपासक सकडालपुत्र वायु से सूखे हुए कच्चे बर्तनों को घर से बाहर निकाल कर धूप में सूखा रहा था उस समय श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे और उससे इस प्रकार बोले—

हे सकडालपुत्र ! यह बर्त्तन किस प्रकार बना है ?

सकडालपुत्र ने उत्तर दिया—हे भगवन ! यह पहले मिट्टी के रूप में था। उस मिट्टी को पानी में भिगो कर राख और गोबर मिला कर चाक पर चढाया जाता है और बाद में उससे बहुत से करक, घड़े और उष्ट्रिकाएँ बनाई जाती हैं।

तब श्रमण भगवान् महावीर ने आजीविकोपासक सक-डालपुत्र को कहा कि—

"सद्दालपुत्ता ! एस णं कोलालभंडे किं उट्ठाणेणं पुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जंति उदाहु अणुट्ठाणेणं अपुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जंति ?"

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासीः--

"भंते ! अणुट्ठाणेणं अपुरिसक्कारपरक्कमेणं, नत्थि उट्ठाणे इवा ... नत्थि परक्कमे इ वा, नियया सव्वभावा।"

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासगं एवं वयासीः—

"सद्दालपुत्ता ! जइ णं तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्केल्लयं वा कोलालभंडं अवहरेज्जा वा विक्खिरेज्जा वा भिंदेज्जा वा अच्छिंदेज्जा वा परिट्ठवेज्जा वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरेज्जा, तस्स णं तुमं पुरिसस्स किं दंडं वत्तेज्जासि ?"

"भंते ! अहं णं तं पुरिसं आओसेज्जा वा हणेज्जा वा बंधेज्जा वा महेज्जा वा तज्जेज्जा वा तालेज्जा वा निच्छोडेज्जा वा निब्भच्छेज्जा वा अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्जा।"

हे सकडालपुत्र ! ये मिट्टी के बर्त्तन उत्थान बल-वीर्य पुरुषकार-पराक्रम से बनाये जाते हैं या इनके बिना ही बन जाते हैं ?

तब आजीविकोपासक सकडालपुत्र ने श्रमण भगवान् महावीर से कहा कि—हे भगवन् ! उत्थान, बलवीर्य, पुरुषकार पराक्रम के बिना ही ये तय्यार हो जाते हैं। उत्थान, बलवीर्य पुरुषकार पराक्रम आदि कुछ नहीं हैं। क्योंकि सब पदार्थ नियत हैं।

तब श्रमण भगवान् महावीर ने सकडालपुत्र आजीविकोपासक से कहा कि—हे सकडालपुत्र ! यदि कोई पुरुष इन पवन से सूखे हुए और पके हुए बर्त्तनों को उठा ले जाय, बिखेर दे, तोड़-फोड़ दे अथवा तुम्हारी अग्निमित्रा स्त्री के साथ भोग भोगने लगे तो तुम उसे दण्ड दोगे या नहीं ?

"सद्दालपुत्ता ! मो खलु तुब्भ केइ पुरिसं वायाहयं वा पक्केल्लयं वा कोलालभंडं अवहरइ वा जाव……… परिट्ठवेइ वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए वा सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ नो वा तुमं तं पुरिसं आओसेज्जसि वा हणेज्जसि वा… ……जाव अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्जसि, जइ नत्थि उट्ठाणे इ वा नत्थि परक्कमे इ वा, नियया सव्वभावा।"

"अह णं, तुब्भ केइ पुरिसे वायाहयं……… जाव परिट्ठवेइ वा अग्गिमित्ताए वा………जाव विहरइ, तुमं वा तं पुरिसं आओसेसि वा जाव… …… ववरोवेसि, तो जं वदसि नत्थि उट्ठाणे इ वा………जाव नियया सव्वभावा, तं ते मिच्छा।"

एत्थ णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए संबुद्धे।

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं वंदेइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी:—

"इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए धम्मं निसामेत्तए।"

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स धम्मं परिकहेइ।

भगवान् ने कहा—हे सकडालपुत्र ! यदि उत्थान, बल, वीर्य, और पुरुषकार पराक्रम नहीं हैं और सब भाव नियत ही हैं तो कोई पुरुष तुम्हारे वायु से सूखे हुए या पके हुए बर्त्तनों को उठा ले जाने वाला या फोड़ने-तोड़ने वाला अथवा तुम्हारी अग्निमित्रा स्त्री के साथ भोग भोगने वाला ठहरता ही नहीं और तुम भी उस पुरुष को आक्रोश वचन कहने वाले यावत् जीवन-रहित करने वाले ठहरते नहीं। यदि वह पुरुष वायु से सूखे हुए वर्त्तनों को तोड़ने-फोड़ने वाला और अग्निमित्रा के साथ बलात्कार करने वाला है और तुम उसे आक्रोश वचन कहने वाले यावत् जीवन-रहित करने वाले हो तो तुम्हारा वह कहना कि "उत्थान आदि नहीं हैं और सब पदार्थ नियत हैं" मिथ्या है।

यह सुनकर वह आजीविकोपासक सकडालपुत्र सम्बुद्ध हो गया। (उसे सत्यज्ञान हो गया।)

तब उस आजीविकोपासक सकडालपुत्र ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया और इस प्रकार बोला:—

"हे भगवान् ! मैं आपके पास से धर्म-श्रवण करने की इच्छा करता हूँ।"

तब श्रमण भगवान् महावीर ने उस आजीविकोपासक सकडालपुत्र को धर्म का उपदेश दिया।

तत्त्व-विभाग

ज्ञातव्य बातें
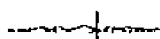
आत्मा दो प्रकार की है—१ संसारी आत्मा २ मुक्तात्मा। कर्म मैल युक्त होने से जो संसार में भ्रमण करता है वह संसारी आत्मा है। जैसे-मनुष्य पशु पक्षी देव, नारकी। जो आत्मा ज्ञान दर्शन चारित्र और वीर्य (पुरुषार्थ) से कर्म क्षय कर देते हैं उन्हे परमात्मा या ईश्वर कहते हैं। स्वभाव से सब आत्माएँ समान हैं।

परमात्मा निराकार, निरंजन, कर्म रहित वीतराग होने से सृष्टिकर्ता नहीं है।

सृष्टि—जगत् अनादि अनन्त है। प्रकृति अनुसार चल रहा है और चलता रहेगा।

संसारी आत्मा अत्यधिक प्रमाण में निगोद (साधारण वनस्पति) में है। इनके दो प्रकार हैं।

(१) व्यवहार राशि—जिसने एक बार भी निगोद को छोड़कर त्रस आदि की गति पाई हो।

(२) अव्यवहार राशि—जो जीव,अनन्त काल से निगोद में ही पड़े हों कभी निगोद दशा न छोड़ी हो।

सुई के अग्रभाग पर आवे, इतने निगोद में अनन्त जीव हैं। निगोद में असंख्यात प्रतर हैं, एक एक प्रतर में असंख्यात श्रेणियाँ हैं। एक एक श्रेणि में असंख्यात गोले हैं। एक एक गोले में असंख्यात शरीर है और एक एक शरीर में अनन्त जीव हैं।

जीव अव्यवहार राशि से निकल कर व्यवहार राशि में आता है तब कर्म के क्षयोपशम के अनुसार एकेन्द्रिय से क्रमशः बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय में पहुँचता है और समकित प्राप्त करता है तब मोक्ष मार्ग के सन्मुख होता है।

समकित-सम्यक्त्व

जीवादि तत्त्वों पर संक्षेप या विशिष्ट रूप (विस्तार) से श्रद्धा करने को सम्यक्त्व कहते हैं।

व्यवहार में सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर श्रद्धा करना और निश्चय में देव आत्मा, गुरुज्ञान, धर्म चैतन्यः में निशंक श्रद्धा होना निश्चय समकित है।

सम्यक्त्व ५ लक्षणों से जाना जाता है:—

१ सम—सब जीवों पर समान बुद्धि रखना। कषायों को मन्द करना।

२ संवेग—संसार, देह, भोग आदि का भय और मोक्ष की अभिलाषा।

३ निर्वेद—भोगावली कर्म निकाचित कर्मोदय से संसार में रहते हुए भी अनासक्त भाव से सहज भाव में रमण करने की निरन्तर भावना।

४ अनुकम्पा—दुःखी जीवों के दुःख मिटाने की चेष्टा।

५ आस्था—पुण्य-पाप, परलोक, स्वर्ग-नरक आदि मानना। वीतराग प्रणीत धर्म पर श्रद्धा करना।

सम्यक्त्व १० प्रकार से होता है।

१ निसर्ग रुचि—दूसरों के बिना उपदेश जातिस्मरण, क्षयोपशम आदि से जो सम्यक्त्व प्राप्त हो।
२ उपदेश रुचि—गुरु आदि के उपदेश से जो सम्यक्त्व हो।
३ आज्ञा रुचि—जिनेश्वर या गुरु की आज्ञा पालन से जो सम्यक्त्व हो।
४ सूत्र रुचि—सूत्र (आगम) पढ़ने से जो सम्यक्त्व हो।
५ बीज रुचि—बीज रूप थोड़ा सीखने पर भी जल में तैल रूप बहुत परिणत होकर जो सम्यक्त्व हो।
६ अभिगम रुचि—११ अङ्ग, १२ उपांग आदि शास्त्रों के विशिष्ट पठन से जो सम्यक्त्व हो।

विकास श्रेणी

दूर होत **मिथ्यात्व** जब जगता समकित-भान ।
केवल समता भाव में लगा रहे तब ध्यान ॥१॥

अव्रत होता दूर जब, त्याग-मार्ग में वृत्ति ।
दिन-दिन तब होती रहे, संयम-धन की वृद्धि ॥२॥

होता दूर **प्रमाद** जब, अप्रमत्ता होत ।
क्षीण **कषाय**, जगे तभी वीतरागता ज्योत ॥३॥

मन वाणी अरु देह के रुकें, सर्व व्यापार ।
योग-शान्ति के होत ही, खुलें मुक्ति के द्वार ॥४॥

मिथ्यापन अव्रत तथा योग, कषाय, प्रमाद ।
पञ्चास्रव संसार है, रोके मुक्ति-प्रसाद ॥५॥

मुक्ति-महल के जानिये, चवदह ही सोपान ।
गुणस्थान पर चढ, करो क्रमिक आत्म कल्याण ॥६॥

*छः भाव रहें संसार में, ×मुक्ति मांही बस दोय ।
आश्रव जग का मूल है, घटे मुक्ति झट होय ॥

---

* छः भावों के नाम—१ उदय, २ उपशम, ३ क्षायिक, ४ क्षमोपशम, ५ पारिणामिक और ६ सन्निपातिक ।

× मोक्ष में दो भाव होते हैं—१ क्षायिक और २ पारिणामिक ।

समकित के आठ आचार हैं:—

१ निःशंकित—जिन वचन में सन्देह न करना।
२ निःकांक्षित—परमत की वाञ्छा न करना।
३ निर्विचिकित्सा—करणी के फल में सन्देह न करना।
४ अमूढ दृष्टि—कुतीर्थियों की प्रशंसा और बाल तपस्वी का आडम्बर देखकर जैनधर्म पर अरुचि न लाना।
५ उवबूह—ज्ञानादि गुणों से धर्म को दिपाना।
६ स्थिरी करण—धर्म से भ्रष्ट-डिगते हुए को स्थिर करना।
७ वत्सलता—साधर्मियों से वत्सलता-प्रेम-रखना।
८ प्रभावना—शुभ कार्यों से जिनमार्ग का प्रभाव फैलाना।

निश्चय समकित के पाँच भेद हैं:—

१ सास्वादान—उपशम से गिरकर मिथ्यात्व में न पहुँचा हो तब तक बिचली दशा के जीव के परिणामों को सास्वादान समकित कहते हैं।
२ क्षायोपशमिक—मिथ्यात्व मोहनीय और अनन्तानुबंधी कषायों के क्षय तथा उपशम से तथा सम्यक्त्व मोहनीय से होने वाले आत्मा के परिणाम विशेष को क्षयोपशम समकित कहते हैं।
३ औपशमिक—कर्म प्रकृतियों के उपशम से होने वाले जीव के परिणाम को उपशम समकित कहते हैं।
४ वेदक—क्षायोपशमिक समकिती जीव जब समकित मोहनीय के अन्तिम पुद्गल के रस का अनुभव करता है, उस समय होने वाले परिणाम को अर्थात् क्षायिक समकित के अव्यवहित पूर्व क्षणवर्ती परिणाम को वेदक समकित कहते हैं।

५ कर्म प्रकृतियों के क्षय होने पर होने वाले परिणामों को क्षायिक समकित कहते हैं।

जीव में असाधारण पारिणामिक तीन भाव हैं:—

१ जीवत्व—जिस शक्ति से आत्मा प्राणों को धारण करे।

२ भव्यत्व—जिस शक्ति से आत्मा को सम्यक्त्व की प्राप्ति हो।[1]

३ अभव्यत्व—जिस गुण के कारण आत्मा में सम्यक्त्व पाने की योग्यता न हो।

जीव की विकास श्रेणी

[जीवस्थान अथवा गुणस्थान]

जीव का संसार-भ्रमण क्यों ?

जिसे ज्ञान है और जो प्रत्येक अवस्था में सुख की अभिलाषा करता है, वह जीव है। जहाँ मोह है वहाँ अज्ञान है और अज्ञान के होते हुए मोह दूर नहीं होता। इस दशा से नहीं निकले हुए जीव 'संसारी' कहलाते हैं। जब मोह सर्वथा दूर हो जाता है तब जीव वीतराग बनता है और जब देह और कर्म छूट जाते हैं तब वह सिद्ध हो जाता है।

सब मानते हैं कि जीव 'संसारी' है परन्तु यदि जीव संसारी है तो वह सिद्ध कैसे हो सकता है ? यदि संसारी जीव

१ सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर जीव की मुक्ति दशा होना अवश्यंभावी है।

समकित के आठ आचार हैं:—

१ निःशंकित—जिन वचन में सन्देह न करना।
२ निःकांक्षित—परमत की वाञ्छा न करना।
३ निर्विचिकित्सा—करणी के फल में सन्देह न करना।
४ अमूढ दृष्टि—कुतीर्थियों की प्रशंसा और बाल तपस्वी का आडम्बर देखकर जैनधर्म पर अरुचि न लाना।
५ उववूह—ज्ञानादि गुणों में धर्म को छिपाना।
६ स्थिरी करण—धर्म से भ्रष्ट-डिगते हुए को स्थिर करना।
७ वत्सलता—साधर्मियों में वत्सलता-प्रेम-रखना।
८ प्रभावना—शुभ कार्यों से जिनमार्ग का प्रभाव फैलाना।

निश्चय समकित के पाँच भेद हैं:—

१ सास्वादान—उपशम से गिरकर मिथ्यात्व में न पहुँचा हो तब तक बिचली दशा के जीव के परिणामों को सास्वादान समकित कहते हैं।
२ क्षायोपशमिक—मिथ्यात्व मोहनीय और अनन्तानुबंधी कषायों के क्षय तथा उपशम से तथा सम्यक्त्व मोहनीय में होने वाले आत्मा के परिणाम विशेष को क्षयोपशम

५ कर्म प्रकृतियों के क्षय होने पर होने वाले परिणामों को क्षायिक समकित कहते हैं।

जीव में असाधारण पारिणामिक तीन भाव हैं:—

१ जीवत्व—जिस शक्ति से आत्मा प्राणों को धारण करे।
२ भव्यत्व—जिस शक्ति से आत्मा को सम्यक्त्व की प्राप्ति हो।[1]
३ अभव्यत्व—जिस गुण के कारण आत्मा में सम्यक्त्व पाने की योग्यता न हो।

जीव की विकास श्रेणी

[जीवस्थान अथवा गुणस्थान]

जीव का संसार-भ्रमण क्यों ?

जिसे ज्ञान है और जो प्रत्येक अवस्था में सुख की अभिलाषा करता है, वह जीव है। जहाँ मोह है वहाँ अज्ञान है और अज्ञान के होते हुए मोह दूर नहीं होता। इस दशा से नहीं निकले हुए जीव 'संसारी' कहलाते हैं। जब मोह सर्वथा दूर हो जाता है तब जीव वीतराग बनता है और जब देह और कर्म छूट जाते हैं तब वह सिद्ध हो जाता है।

सब मानते हैं कि जीव 'संसारी' है परन्तु यदि जीव संसारी है तो वह सिद्ध कैसे हो सकता है ? यदि संसारी जीव

१ सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर जीव की मुक्ति दशा होना अवश्यं-भावी है।

सिद्ध हो सकते हैं तो सिद्ध भी संसारी क्यों नहीं हो सकते ? ऐसी शंका हो सकती है। इसका समाधान एक दृष्टान्त से करते हैं:—

तुम्बे का स्वभाव तिरने का है। यही नहीं वह तो दूसरों को भी तार सकता है, यह बात सब जानते हैं। परन्तु उस तुम्बे पर यदि मिट्टी और कपड़े के लेप लगे हों तो वह पानी में डूबा पड़ा रहता है। जैसे जैसे लेप के पटल दूर होते जाते हैं वैसे-वैसे वह तुम्बा ऊपर आता जाता है और ज्यों ही लेप सर्वथा छूट जाता है त्यों ही वह पानी पर स्वभावतः तिरने लगता है। जब तुम्बा पानी के अन्दर डूबा हुआ पड़ा था तब भी उसका तिरने का स्वभाव नष्ट नहीं हुआ था परन्तु लेप के कारण उसका स्वभाव आवृत्त हो गया था।

जीव की स्थिति भी ठीक तुम्बे के सदृश है। मोह के आवरणों से जीव आवृत्त हो गया है इसलिए उसका मूलस्वभाव अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तचारित्र (वीतराग दशा) अनन्त वीर्य ढँक गया है। जैसे-जैसे मोह के आवरण शिथिल होते जाते हैं वैसे वैसे वह ऊँचा उठता है, विकास के मार्ग पर गति करता है और जब मोह का समूल विनाश होता है और दूसरे सांसारिक बन्धन भी छूट जाते हैं तब वह संसार-सागर को तिर जाता है। अर्थात् सिद्ध अवस्था प्राप्त कर लेता है।*

सिद्ध का स्थान जल की सतह के समान जगत् में सर्वोच्च और सर्वोत्तम है। प्रत्येक जीव में इस स्थान को प्राप्त करने की

---

* सिद्धस्थान जीव का स्वाभाविक स्थान है। मोह के कारण ही संसार उसका अस्वाभाविक स्थान है। ज्ञान पूर्वक स्वाभाविक स्थान मिलने के पश्चात् अस्वाभाविक स्थान में कौन आवे

योग्यता है परन्तु जिस जीव को किसी भी अंश में इस स्थान को प्राप्त करने की इच्छा होती है वह शास्त्रीय परिभाषा में 'भव्य' कहा जाता है और जिसे इस स्थान की इच्छा नहीं होती उसे 'अभव्य' कहते हैं। भव्यत्व-मोक्ष जाने की इच्छा के होने पर भी मोक्ष मार्ग में पुरुषार्थ करने वाला ही क्रमशः ऊँचा जाता है। सिद्ध दशा तक के स्थानों को गुणस्थान कहते हैं। शास्त्रों में इन्हें जीव-स्थानक भी कहा है।

चवदह गुणस्थानकः—

(१) मिथ्यात्व गुणस्थानक (२) सास्वादन गुणस्थानक (३) मिश्र गुणस्थानक (४) अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानक (५) देशविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक (६) प्रमत्तसंयति गुणस्थानक (७) अप्रमत्तसंयति गुणस्थानक (८) निवृत्ति बादर (९) अनिवृत्ति बादर (१०) सूक्ष्म सम्पराय (११) उपशान्त मोह० (१२) क्षीण मोह० (१३) सयोगी केवली गुणस्थान (१४) अयोगी केवली गुणस्थान।

बहिरात्म-भूमिकाएँः—

मिथ्यात्व अर्थात् झूठ, अज्ञानता। अज्ञान दशा को गुण-स्थान में स्थान क्यों दिया ? यह शंका स्वाभाविक है। इसका समाधान यह है कि जहाँ तक जीव सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं करता वहाँ तक वह भले ही अज्ञान (ज्ञान का अभाव नहीं परन्तु मिथ्या विपरीत ज्ञान) रहे परन्तु अज्ञान के इस वर्ग में भी ज्ञान का शिक्षण तो मिलता ही है। नहीं तो सीधा ज्ञान में कैसे जा सकता है ? जैसे प्रथम कक्षा में प्रविष्ट कराने के पूर्व बालक को मूलाक्षर और अंक सिखाये जाते हैं। इस बालवर्ग का भी पाठशाला में

दृष्टि थी अब उसे अपने स्वरूप का भान हुआ और वह अन्तर्मुख बना अर्थात् सत्य मार्ग की ओर उसकी अटल श्रद्धा हुई। इसमें तीन प्रकार होते हैं:—

कितनेक जीवों को प्रथम कोटि के दोषों के सर्वथा क्षीण हो जाने से यह दशा प्राप्त होती है। उन जीवों की इस दशा को 'क्षायिक सम्यक्त्व' कहते हैं। यह दशा सब से ऊँची है। ऐसे जीव निश्चय से तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं। कितनेक जीवों के प्राथमिक दोषों में से अमुक दोष ढँक जाते हैं। इस स्थिति को 'क्षायोपशमिक सम्यक्त्व' कहते हैं। जिन जीवों के प्राथमिक दोष केवल ढँक गये होते हैं उनकी स्थिति को 'उपशम सम्यक्त्व' कहते हैं।

इन प्राथमिक दोषों के नाम इस प्रकार हैं—(१) अनंतानुबन्धी क्रोध (२) अनन्तानुबन्धी मान (३) अनन्तानु बन्धी माया (४) अनन्तानुबन्धी लोभ (५) सम्यक्त्व मोहनीय (६) मिथ्यात्व मोहनीय और (७) मिश्र मोहनीय। अन्तिम तीन दोष दूर होने के बाद 'सम्यक् दर्शन' होता है। प्रथम के चार दोष चारित्र संबंधी हैं। आसक्ति या मोह की न्यूनाधिकता के कारण कषायों के चार प्रकार हैं। अनन्तानु बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इतने विशेष तीव्र होते हैं कि जिनके कारण जीव को अनन्त काल तक संसार में भ्रमण करना पड़ता है। पर्वत के फटने के समान अनन्तानुबन्धी क्रोध होता है। पत्थर का स्तम्भ कभी नहीं झुक सकता इसी तरह अनन्तानु बन्धी मान जीवन भर दूर नहीं होता। बाँस के मूल में जैसी गाँठें होती हैं वैसी कपट की गांठें अनन्तानु बन्धी माया वाले जीव में होती हैं। जैसी किरमची रङ्ग पक्का होता है वैसा अनन्तानुबन्धी लोभ का रङ्ग होता है। जो अनन्त कर्मों का बन्धन कराने वाला है वह अनन्तानुबन्धी कहा जाता है।

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ तीव्रतम कषाय हैं। इनसे क्रमशः उतरते हुए कषायों को अप्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया, लोभ संज्वलनीय क्रोध, मान, माया और लोभ ऐसे नाम दिये गये हैं। चारों प्रकार के कषायों की चौकड़ी के कुल १६ भेद हुए। इन कषायों को नौ बातों में उत्तेजन मिलता है इसलिए वे नौ 'नोकषाय' कहे जाते हैं। नौ नोकषाय के नाम इस प्रकार हैं:— (१) हास्य (२) रति (३) अरति (४) भय (५) शोक (६) जुगुप्सा (७) स्त्री वेद (८) पुरुष वेद (९) नपुंसक वेद।

इस प्रकार कुल २५ चारित्र के दोष हैं। ये दोष चारित्र अर्थात् आत्म स्वरूप की रमणता में (शुद्ध स्वरूप को प्रकट करने में) बाधा पहुँचाते हैं। इसलिए जैसे जैसे ये दोष दूर होते जाते हैं त्यों त्यों चारित्र का विकास होता है अर्थात् आत्मा अपने मूल स्वभाव में आता जाता है।

चौकड़ी दूर हो जाने के कारण वह आत्मा अब चारित्र के मार्ग में गति करने लगता है।

सच्चे अर्थ में प्रयुक्त 'श्रावक' की यह योग्यता मानी गई है। ऐसा पुरुष सत्य में दृढ़ श्रद्धा वाला होता है। धन, माल, देह और कुटुम्ब-परिवार में गृद्ध नहीं होता है, परमार्थी होता है, निर्भय होता है, वह मरना पसन्द करता है पर परमार्थ और सत्य से विचलित नहीं होता। वह नम्र होता है, सहनशील होता है, प्रेमी होता है, शुद्ध ब्रह्मचर्य उसका लक्ष्य होता है, ऐसे-ऐसे श्रावक के २१ गुण बताये गये हैं।

(६) प्रमत्त-संयत गुणस्थानकः—

जब आत्मा उपर्युक्त ११ दोषों के अतिरिक्त प्रत्याख्यानावरण चौकड़ी (क्रोध, मान, माया और लोभ) को दूर कर देता है तब वह इस कक्षा में आता है। ऐसा आत्मा सारे संसार को कुटुम्ब मानता है। उसके मन में स्वार्थ जैसी कोई चीज नहीं होती है। सांसारिक बन्धन और भोग-विलास की सब चीजों का वह त्याग करता है। इतना ही नहीं परन्तु वह अपने देह को भी जगत् के जीवों के कल्याण के लिए—धर्म के लिए—अर्पण करने को तैयार होता है। जैन सूत्रों में 'श्रमण निर्ग्रन्थ' अथवा साधु आत्माओं की यह भूमिका बताई गई है।

(७) अप्रमत-संयत गुणस्थानकः—

ऊपर बताये हुए पन्द्रह और संज्वलन क्रोध मिला कर कुल १६ दोषों को जो आत्मा क्षीण करता है, क्षयोपशम करता है या उपशम करता है वह इस भूमिका पर पहुँचता है। इस

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ तीव्रतम कषाय हैं। इनसे क्रमशः उतरते हुए कषायों को अप्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया, लोभ सञ्ज्वलनीय क्रोध, मान, माया और लोभ ऐसे नाम दिये गये हैं। चारों प्रकार के कषायों की चौकड़ी के कुल १६ भेद हुए। इन कषायों को नौ बातों से उत्तेजन मिलता है इसलिए वे नौ 'नोकषाय' कहे जाते हैं। नौ नोकषाय के नाम इस प्रकार हैं:—(१) हास्य (२) रति (३) अरति (४) भय (५) शोक (६) जुगुप्सा (७) स्त्री वेद (८) पुरुष वेद (९) नपुंसक वेद।

इस प्रकार कुल २५ चारित्र के दोष हैं। ये दोष चारित्र अर्थात् आत्म स्वरूप की रमणता में (शुद्ध स्वरूप को प्रकट करने में) बाधा पहुँचाते हैं। इसलिए जैसे जैसे ये दोष दूर होते जाते हैं त्यों त्यों चारित्र का विकास होता है अर्थात् आत्मा अपने मूल स्वभाव में आता जाता है।

(५) देश विरति सम्यक् दृष्टि गुणस्थानक—चतुर्थ और इस पञ्चम गुणस्थान में मुख्य विशेषता यह है कि चौथे गुणस्थानक में पहुँचे हुए जीव को अपने स्वरूप की प्रतीति हो जाती है, वह धर्म के अभिमुख होता है परन्तु अभी तक धर्म का आचरण करने की शक्ति उसमें नहीं आती है। वह सत्य को सत्यरूप मानता है और उस पर श्रद्धा भी रखता है। ऐसा जीव जब ऊपर बताये हुए सात दोषों के उपरान्त अप्रत्याख्यानीय कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार दोषों को (क्षायिक रूप में, क्षयोपशम रूप में अथवा उपशम रूप में) दूर करता है तब वह पाँचवें गुणस्थान की दशा प्राप्त करता है। अप्रत्याख्यानावरणीय

पुनः उदय होने से वह पीछा गिर पड़ता है। इस भूमिका पर पहुँचा हुआ आत्मा गिरता हुआ प्रथम गुणस्थानक पर भी आ जाता है।

क्षपक श्रेणी वाला आत्मा दोषों का समूल नाश करता हुआ आगे चढता है इसलिए वह ग्यारहवें गुणस्थान में नहीं जाता हुआ दसवें से सीधा बारहवें पर पहुँचता है। वह मोक्ष प्राप्त किये बिना नहीं रहता। इसी लिए इस गुणस्थान को 'अपूर्वकरण' भी कहते हैं। पहले कभी न हुआ ऐसा वह देखता है और आचरण करता है। तथा ऐसी अपूर्व भावना में वह लीन हो जाता है।

(९) अनिवृत्ति बादर गुणस्थानकः—

इसमें उपशम और क्षपक—दोनो तरह की आत्म-स्थिति हो सकती है। इसमें वासनाओं का नाश हो जाता है। इस भूमिका में आने के बाद देह सम्बन्धी चिन्हों के रहते हुए भी विषय-विकार दूर हो जाते हैं। अर्थात् स्त्रीवेद, पुरुषवेद, और नपुंसकवेद दूर हो जाता है। केवल छह नोकषाय और संज्वलन लोभ यों सात चारित्र के दोष रह जाते हैं।

(१०) सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानकः—

इस गुणस्थान में बाकी रहे हुए छह नो कषाय भी उपशान्त अथवा क्षीण हो जाते हैं। केवल सूक्ष्म लोभ रहने के कारण संसार सूक्ष्म (थोड़े समय के लिए) रहता है। बीज जितना सूक्ष्म संसार शेष रहा ऐसा कहा जाता है।

कोटि पर पहुँचे हुए आत्मा का क्रोध रूपी महाशत्रु सदा के लिए दूर हो गया होता है अतः उसके मन में भी कभी आवेश नहीं आ सकता। उसकी प्रकृति चन्दन के समान शीतल होती है। उसे न तो किसी पर राग होता है और न किसी पर द्वेष होता है। वह सब जीवों का मित्र होता है। वह जगत् की माता के समान और पतित के लिए पिता के समान होता है। इस स्थिति पर पहुँचे हुए आत्मा को प्रमाद पसन्द नहीं होता इसलिए वह या तो उसी भव में या अधिक से अधिक तीसरे भव में अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है।

(८) निवृत्ति बादर गुणस्थानक:—

इस भूमिका में पहले की भूमिका की अपेक्षा यह विशेषता है कि संज्वलन मान भी इसमें दूर हो जाता है। सिर्फ संज्वलन माया और लोभ शेष रह जाते हैं। शास्त्रीय भाषा में इस गुणस्थान का मूल नाम नियट्टिबादर कहा गया है। उसका संस्कृत रूप निवृत्तिबादर है।

पुनः उदय होने से वह पीछा गिर पड़ता है। इस भूमिका पर पहुँचा हुआ आत्मा गिरता हुआ प्रथम गुणस्थानक पर भी आ जाता है।

क्षपक श्रेणी वाला आत्मा दोषों का समूल नाश करता हुआ आगे चढता है इसलिए वह ग्यारहवें गुणस्थान में नहीं जाता हुआ दसवें से सीधा बारहवें पर पहुँचता है। वह मोक्ष प्राप्त किये बिना नहीं रहता। इसी लिए इस गुणस्थान को 'अपूर्वकरण' भी कहते हैं। पहले कभी न हुआ ऐसा वह देखता है और आचरण करता है। तथा ऐसी अपूर्व भावना में वह लीन हो जाता है।

(९) अनिवृत्ति बादर गुणस्थानकः—

इसमें उपशम और क्षपक—दोनो तरह की आत्म-स्थिति हो सकती है। इसमें वासनाओं का नाश हो जाता है। इस भूमिका में आने के बाद देह सम्बन्धी चिन्हों के रहते हुए भी विषय-विकार दूर हो जाते हैं। अर्थात् स्त्रीवेद, पुरुषवेद, और नपुंसकवेद दूर हो जाता है। केवल छह नोकषाय और संज्वलन लोभ यों सात चारित्र के दोष रह जाते हैं।

(१०) सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानकः—

इस गुणस्थान में बाकी रहे हुए छह नो कषाय भी उपशान्त अथवा क्षीण हो जाते हैं। केवल सूक्ष्म लोभ रहने के कारण संसार सूक्ष्म (थोड़े समय के लिए) रहता है। बीज जितना सूक्ष्म संसार शेष रहा ऐसा कहा जाता है।

(११) उपशान्त मोह गुणस्थान:—

जो आत्मा सब दोषों को दबाता-दबाता ऊपर चढ़ा है वह इस स्थिति मे आता है। इसमें सब कषायों का उपशम ही होता है। इस गुणस्थानक में रहते हुए मृत्यु होने पर पुनः जन्म लेकर निश्चय मोक्ष प्राप्त कर सकता है। मनुष्य भव पाकर उसे उपशान्त किये हुए दोषों को अलग-अलग क्षीण तो करना ही पड़ता है परन्तु यदि इस गुणस्थानक मे जीवित रहे तो पुनः दसवें गुणस्थानक मे आता है और सूक्ष्म लोभ-जिसे उसने दबाया होता है—का उदय होने पर कषाय बढते हैं ऊपर बताये अनुसार नीचे गिरता है। इससे स्पष्ट है कि इस भूमिका में पतन की संभावना है। उपशान्त किये हुए दोष इतने ऊँचे चढ़े हुए आत्मा को भी पुन. गिरा देते हैं इसलिए क्षीणता पर विशेष ध्यान देना चाहिए। दोषों के क्षीण हुए बिना मोक्ष नहीं मिल सकता है।

वीतराग दशा—परमात्म दशा

(१२) क्षीण मोह गुणस्थानक:—

क्षपक श्रेणी पर चढ़ा हुआ आत्मा जब सूक्ष्म मोह को भी क्षीण कर देता है तब वह इस भूमिका पर पहुँचता है। अब शेष क्या रहा? कुछ भी शेष न रहने से वह आत्मा शीघ्र ही तेरहवें गुणस्थानक मे पहुँच जाता है।

(१३) सयोगी केवली गुणस्थानक:—

यहाँ वीतरागता की पराकाष्ठा है। सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता है। पूर्ण आत्मशक्ति और चारित्र गुण का विकास हो जाता है।

शरीर रहता है तो भी विदेही-सी अवस्था हो जाती है। राग-द्वेष का सम्पूर्ण नाश हो जाता है और आठ कर्मों में से चार आत्म-घातक (घनघाति) कर्मों का पूरा नाश हो जाता है। तीर्थङ्कर पद-धारी पुरुष अनेक जीवों के तारण हार बनते हैं। केवली जीव आयुष्य पूर्ण कर मोक्ष में जाते हैं। इस दशा में आत्मा की अनन्त शक्ति पूर्ण रूप से प्रकट होती है।

(१४) अयोगी केवली गुणस्थानः—

तेरहवें गुणस्थान में रहे हुए आत्मा के साथ चार अघाति कर्म रह जाते हैं। इसलिए उस भूमिका का आत्मा देह से आवृत्त होता है। जब चार अघाति कर्मों को छोड़कर आत्मा देह का त्याग कर योग (मन, वचन और काया) रहित हो जाता है तो इस अन्तिम अवस्था में पहुँच कर सच्चिदानन्द स्वरूप में सदा के लिए लीन हो जाता है। अर्थात् वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। देह को छोड़कर मुक्ति स्थान में पहुँचने तक के समय में जीव की यह भूमिका मानी गई है।

तीन दशाः—

आत्मा की इस विकास श्रेणी की तीन अवस्थाएँ मानी जा सकती है।

(१) समकित—सत्यज्ञान होने से पूर्व की दशा को हम "बहिरात्मदशा" कह सकते हैं जिसमें आत्मा निज स्वभाव से दूर और दूर चला जाता है।

(२) समकित प्राप्त होने के बाद से जब तक राग-द्वेष का समूल नाश न हो वहाँ तक की दशा को "अन्तरात्मदशा" कह

सकते हैं जिसमे आत्मा अन्तर्मुख बनता है अर्थात् निज स्वभाव की तरफ आता जाता है।

(३) जब आत्मा स्वभाव मे पूर्ण रूप से रमण करने लगता है और राग-द्वेष के बन्धनों मे सर्वथा मुक्त हो जाता है, उस अवस्था को "परमात्मदशा" कह सकते हैं।

गुणस्थानों की स्थितिः—

इन चौदह गुणस्थानों मे से १-४-५-६ और १३ वाँ गुणस्थान लम्बे काल तक रह सकते हैं। अर्थात् इन गुणस्थानों मे आत्मा कम से कम एक अन्तर्मुहूर्त और अधिक से अधिक रहे तो बहुत लम्बे समय तक रह सकता है।

शेष गुणस्थानो की दशा मे कोई भी आत्मा एक अन्तर्मुहूर्त से अधिक लम्बे समय तक नही रह सकता है। चवदहवें गुणस्थान में तो (आत्मा) केवल 'अ, इ, उ, ऋ, लृ' बोलने में जितना समय लगता है उतने समय ही रहता है।

गुणस्थानक के भाव

पहले कहा जा चुका है कि आत्मा या जीव का कभी नाश नही होता। यह सदा कायम रहने वाला नित्य तत्त्व है। ऐसा कहा जाता है। आत्मा नित्य होने पर भी उसकी पर्याय सदा क्षण-क्षण बदलती रहती हैं। ज्ञान, अज्ञान आदि आत्मा की पर्यायें हैं।

आत्मा की सब पर्याय एक ही अवस्था वाली नहीं होती हैं। आत्मा की भिन्न-भिन्न अवस्था को भाव कहते हैं। आत्मा

की अधिक से अधिक पाँच पर्याय हो सकती हैं। वे पाँचों भाव इस प्रकार हैं:—

भावों का स्वरूप:—

१ औपशमिकभाव २ क्षायिकभाव ३ क्षायोपशमिकभाव ४ औदयिकभाव और ५ पारिणामिकभाव। (सूत्रों में सन्निपातिकभाव भी छठा भाव कहा गया है।)

(१) कर्म के उपशम से पैदा हो वह औपशमिक भाव कहा जाता है। उपशम एक प्रकार की आत्म-शुद्धि है जो दोषों के दब जाने से प्रकट होती है।

(२) कर्म के क्षय से पैदा हो वह क्षायिक भाव है। क्षय आत्मा की परम विशुद्धि है जो कर्म के सदा के लिए छूट जाने से प्रकट होती है।

(३) अमुक कर्म के क्षय से और अमुक कर्म के उपशम से पैदा हो वह क्षायोपशमिक भाव कहा जाता है।

(४) कर्म के उदय से पैदा हो वह औदयिक भाव है। उदय एक प्रकार की आत्मा की कलुषितता है जो मैल मिलने से पानी में आने वाली मलिनता के समान कर्म फल के अनुभव से उत्पन्न होती है।

(५) आत्मा का सहज भाव पारिणामिक भाव है। यह भाव किसी कर्म के निमित्त से नहीं होता परन्तु स्वाभाविक होता है।

संसारी अथवा मुक्त—कोई भी आत्मा हो उसकी सब पर्यायें ऊपर बताये हुए पाँच भावों में से किसी न किसी भाव में

अवश्य होंगी। इन पाँच भावों मे से न्यूनाधिक भाव प्रत्येक आत्मा मे अवश्य होते हैं। तथा आत्मा या जीव के सिवाय किसी दूसरे मे ये भाव नहीं हो सकते इसलिए उपयोग की तरह भाव भी जीव के स्वरूप हैं।

समस्त मुक्त जीवों में केवल दो भाव ही होते हैं—क्षायिक और पारिणामिक। सांसारिक जीवों में कोई तीन भाव वाले, कोई चार भाव वाले और कोई पाँच भाव वाले होते हैं परन्तु दो भाव वाले नहीं होते।

प्रथम और तीसरे गुणस्थान में तीन भाव हैं—उदय, क्षायोपशमिक और पारिणामिक।

दूसरे, चौथे, पाँचवे, छठे, सातवें और आठवें से ग्यारहवें तक में उपशम श्रेणी वाले में चार भाव पाये जाते हैं—उदय, उपशम, क्षायोपशमिक और पारिणामिक।

आठवें से लेकर बारहवें गुणस्थानक क्षपक श्रेणी वाले में चार भाव पाये जाते हैं—उदय, क्षायोपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक।

तेरहवे और चवदहवे गुणस्थानक में तीन भाव पाये जाते हैं—औदयिक, क्षायिक और पारिणामिक।

सिद्ध मे दो भाव पाये जाते हैं—क्षायिक और पारिणामिक।

(पं० सुखलालजी कृत तत्त्वार्थ सूत्र से अनुवादित)
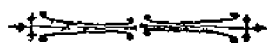
चौदह गुणस्थानक और संसार के पाँच कारण

जीव संसार के बन्धन में पड़ा हुआ है। इस बन्धन के पाँच कारण कहे गये हैं—(१) मिथ्यात्व (२) अव्रत (३) प्रमाद (४) कषाय और (५) योग। संसार बन्धन के इन पाँच कारणों में से जैसे-जैसे आत्मा का विकास होता जाता है वैसे-वैसे एक-एक कारण क्रमशः कम हो जाता है और इन बन्धन के पाँच कारणों के स्थान पर संवर के निमित्त उपस्थित होते जाते हैं।

चौदह गुणस्थानकों के सोपान पर आत्मा जैसे-जैसे चढ़ता जाता है वैसे-वैसे नीचे के बन्धन के कारण अनुक्रम से दूर होते जाते हैं:—

प्रथम, द्वितीय और तृतीय गुणस्थान में बन्धन के पाँचों कारण रहते हैं। चतुर्थ गुणस्थान में मिथ्यात्व दूर हो जाता है इसलिए वहाँ बन्धन के चार कारण रहते हैं। पञ्चम और छठे गुणस्थान में मिथ्यात्व और अव्रत के दूर हो जाने से बन्धन के तीन ही कारण रह जाते हैं।

सातवें गुणस्थान में जब आत्मा पहुँचता है तब प्रमाद भी दूर हो जाता है इसलिए बन्धन के दो ही कारण रह जाते हैं—कषाय और योग।

बारहवें गुणस्थान में कषाय भी दूर हो जाते हैं। इसलिए केवल योग शेष रह जाता है। चौदहवें गुणस्थान में तो योग भी छूट जाता है इसलिए वहाँ आत्मा के कर्म-बन्धन का कोई कारण नहीं रहता है।

इस अनुक्रम को हम दूसरी तरह भी कह सकते हैं जैसे कि सम्यक्त्व, व्रत, अप्रमाद, अकषाय और अयोग ये पाँच मुक्ति के सोपान हैं। जब आत्मा चौथे गुणस्थान पर पहुँचता है तब सम्यक्त्व प्रकट होता है।

पाँचवें गुणस्थान में अमुक प्रमाण में और छठे गुणस्थान में पूर्ण प्रमाण में व्रत का विकास हो जाता है।

सातवें गुणस्थान में अप्रमाद गुण की सिद्धि होती है। बारहवें में मोह दूर हुआ कि आत्मा कषाय-रहित दशा प्राप्त करता है। चौदहवें गुणस्थान पर पहुँचने पर योग रहित होने से अयोग दशा की सिद्धि होती है।

कर्म-प्रकृति

कर्म चौफर्सी पुद्गल समूह है जो जीव के मन-वचन-काय रूप योग संचालन के समय आकृष्ट होकर आत्मा के साथ लगते हैं और समय पर आत्मा को शुभाशुभ फल देते हैं।

आत्मा का मूल स्वभाव ज्ञान, दर्शन, उपयोगमय, सत्-चित्-आनन्द (सच्चिदानन्द) स्वरूप निराकार निरञ्जन शुद्ध चैतन्य-रूप है। कर्म से लिप्त आत्मा संसार में अनादि काल से विविध गतियों में जीवयोनियों में परिभ्रमण करता रहता है। संसार के जन्म, जरा, मरण रूप त्रिविध ताप से तप्त रहता है।

अब कभी शुभ कर्मों के उदय से सम्यक्त्व प्राप्त होता है तब से दान, शील, तप, भाव, संयम, सत्कार्य द्वारा विषय कषायों

को कम करते २ आत्म शुद्धि की ओर बढ़ता है और जब सम्पूर्ण कर्म क्षय हो जाता है तब संसार से मुक्त शुद्ध चैतन्य परमात्मा बन जाता है।

कर्मों की मूल प्रकृतियाँ आठ हैं जो आत्मा के मूल आठ गुणों को रोकती हैं। कर्म क्षय होने पर आत्म-गुण प्रकट होते हैं।

१. ज्ञानावरणीय—आत्मा के अनन्त ज्ञान गुण को रोकने वाला कर्म। जैसे सूर्य के आड़े बादल।

२. दर्शनावरणीय—आत्मा के अनन्त ज्ञान गुण को रोकने वाला कर्म। जैसे राजा का चौपदार।

३. वेदनीय—आत्मा के अनन्त अव्याबाध सुख-गुण को रोकने वाला कर्म। इसके दो प्रकार हैं:—साता वेदनीय और असाता वेदनीय। दृष्टान्त—

साता वेदनीय—मधुलिप्त छुरी या तलवार जैसा।
असाता वेदनीय—अफीम लिप्त पत्थर जैसा।

४. मोहनीय—आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्र गुण को रोकने वाला कर्म। जैसे मदिरापान।

५. आयुष्य—आत्मा के अजर अमरत्व गुण को रोकने वाला कर्म। जैसे खोड़ा-बेड़ी वाला कैदी।

६. नाम—आत्मा के अमूर्त गुण को रोकने वाला कर्म। जैसे चित्रकार।

७. गोत्र—आत्मा के अगुरुलघुत्व गुण को रोकने वाला कर्म। जैसे कुम्भार (छोटे बड़े बर्तन बनाने वाला।)

८. अन्तराय—आत्मा की अनन्त शक्ति रूप गुण को रोकने वाला कर्म। जैसे राजा का भण्डारी।

स्वरूपाचरण चारित्र और अनन्त वीर्य—आत्मा के मूल गुणों-का घात करने वाला १-२-४-८ वाँ घातिक कर्म और ३-५-६-७ वाँ अघातिक कर्म कहलाते हैं।

१—कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ और बन्ध के कारणः—

१ ज्ञानावरणीय कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ ५ हैः—

१—मतिज्ञानावरण—[1]मतिज्ञान का आवरण (पर्दा या रुकावट)
२—श्रुतिज्ञानावरण—[2]श्रुतज्ञान का आवरण ,, ,,
३—अवधिज्ञानावरण—[3]अवधिज्ञान का आवरण ,, ,,
४—मनःपर्यवज्ञानावरण—[4]मनःपर्यव ज्ञान का आवरण ,,
५—केवलज्ञानावरण—[5]केवल सम्पूर्ण ज्ञान का आवरण ,,

२—दर्शनावरणीय कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ ९ हैः—

१—चक्षुदर्शनावरण चक्षुद्वारा होने वाले दर्शन का आवरण।
२—अचक्षुदर्शनावरण—चक्षु के अतिरिक्त दूसरी इन्द्रियों से होने वाले दर्शन का आवरण।

---

१ पांच इन्द्रिय और मन द्वारा जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं।

२ मतिज्ञान से अधिक अथवा शास्त्रीय ज्ञान को श्रुत ज्ञान कहते हैं।

३ इन्द्रियों से अप्रत्यक्ष रूपी पुद्गलों को मर्यादित जाने उसे अवधि ज्ञान कहते हैं।

४ मनोभाव जैसे सूक्ष्म पुद्गलों को भी जानने की शक्ति को मनःपर्यवज्ञान कहते हैं।

५ सर्वकाल, सर्व पर्याय के सम्पूर्ण ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं।

३-अवधि दर्शनावरण-अवधि दर्शन का आवरण।
४-केवल दर्शनावरण-जिससे केवल दर्शन आच्छादित हो।
५-निद्रा-सुख से सोवे, सुख से जागे ऐसी निद्रा।
६-निद्रा-निद्रा-आवाज देने से टूटे ऐसी निद्रा।
७-प्रचला-बैठे २ नींद आवे ऐसी निद्रा।
८-प्रचला प्रचला--चलते फिरते नींद आवे ऐसी निद्रा।
९-स्त्यानगृद्धि निद्रा-दिन में सोचे हुए कार्य को नींद में कर डाले ऐसी निद्रा।

३ वेदनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ २ हैं:—

१ सातावेदनीय-जिससे साता (सांसारिक सुख) वेदी जाय।
२ असातावेदनीय-जिसके कारण दुःख वेदा जाय।

४ मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियाँ हैं:—

मोहनीय कर्म के मुख्य २ भेद। दर्शन मोह और चारित्र मोह। †दर्शनमोह की ३ और *चारित्रमोह की २५, कुल उत्तर प्रकृति २८। दर्शन मोह के ३ निम्न प्रकार—

१ सम्यक्त्व मोहनीय-दूषित सम्यक्त्व प्राप्त हो।
२ मिथ्यात्व मोहनीय-जिनप्रणीत तत्त्वों पर श्रद्धा न हो।
३ मिश्र मोहनीय-न पूरी तत्त्व रुचि (श्रद्धा), न पूरी अतत्त्व-रुचि (अश्रद्धा) हो।

चारित्र मोह की उत्तर प्रकृतियाँ २५ (१६ कषाय, ९ नो कषाय) कष (संसार) + आय (लाभ)। जिससे संसार बढ़े उसको कषाय कहते हैं।

---

† यथार्थ श्रद्धा (सम्यक्त्व) को विकृत करे।

* चारित्र गुण का घातक हो।

४ अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ-जो जीव के सम्यक्त्व को नष्ट करके अनन्त काल तक संसार भ्रमण करावे। इस चौकड़ी से गति नरक की। स्थिति यावज्जीवन की है।

४ अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ-जो कषाय आत्मा के देशविरति गुण (श्रावकपन) का घात करे। इस चौकड़ी से गति तिर्यञ्च की। स्थिति १२ मास की है।

४ प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ-जो आत्मा के सर्वविरति चारित्र गुण का घात करे। इस चौकड़ी से गति देव की। स्थिति ४ मास की।

४ संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ-जो आत्मा के यथाख्यात चारित्र गुण का घात करे (प्रकट न होने दे)। इस चौकड़ी से गति देव की, स्थिति क्रोध की २ मास, मान की १ मास, माया की १५ दिन और लोभ की अन्तर्मुहूर्त्त की है।

नोकषाय (कम कषाय) कषायों को उत्तेजित करने वाले हास्यादिक नव प्रकार हैं:—

१ हास्य–जिसके उदय से हँसी आवे।
२ रति–विषयों में उत्सुकता हर्ष होना।
३ अरति–धर्म कार्य (सत्कार्य) में अरुचि होना।
४ भय–जिसके उदय से भय (डर) हो।
५ शोक–जिसके उदय से शोक (आर्तध्यान) हो।
६ जुगुप्सा-जिसके उदय से दूसरे की निन्दा-घृणा-दुगच्छा हो।
७ स्त्रीवेद–पुरुष के साथ रमण करने (भोग) की इच्छा।
८ पुरुषवेद–स्त्री के साथ रमण करने (भोग) की इच्छा।
९ नपुंसकवेद–स्त्री-पुरुष दोनों के साथ रमण करने (भोग) की इच्छा।

(नाम कर्म से उदित बाह्य चिन्ह को द्रव्य वेद कहते हैं और मैथुन की अभिलाषा को भाव वेद कहते हैं। पुरुष की कामाग्नि घास जलने जैसी, स्त्री की मेंगणी जलने जैसी, नपुंसक की कामाग्नि नगरदाह समान होती है।)

५ आयुकर्म की उत्तर प्रकृतियाँ चार हैं:—

१ नरकायु, २ तिर्यञ्चायु, ३ मनुष्यायु और ४ देवायु।

६ नाम कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ ६३ हैं:—

४ गति नाम (देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नरक गति)

५ जाति नाम (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति।)

५ शरीर नाम (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस्, कार्माण शरीर।)

३ अंगोपांग नाम (औदारिक, वैक्रिय, आहारक के अंगोपांग)

५ बन्धन नाम (औदारिक आदि पांच शरीर के बन्धन नाम कर्म।)

५ संघातन नाम (औदारिक आदि पांच शरीर का संघात नाम कर्म।)

६ संहनन नाम १ वज्रऋषभ नाराच, २ ऋषभ नाराच, ३ नाराच, ४ अर्धनाराच, ५ कीलिक, और ६ सेवार्त संहनन नामकर्म)

६ संस्थान नाम (१ समचतुरस्र, २ न्यग्रोध परिमण्डल, ३ सादि ४ कुब्जक, ५ वामन और ६ हुंडक संस्थान नाम कर्म)

५ वर्ण नाम (काला, नीला, लाल, पीला, और श्वेत वर्ण नाम कर्म।)

२ गंध नाम (सुरभि-सुगन्ध और दुरभि-दुर्गन्ध नाम कर्म।)
५ रस नाम (तीखा, कड़ुआ, कषायला, खट्टा और मीठा रस नाम कर्म।)
८ स्पर्श नाम (हल्का, भारी, मृदु, खर, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष।)
४ आनुपूर्वी नाम (चार गति की आनुपूर्वी नाम कर्म।)
२ विहायोगति नाम (शुभ और अशुभ चलने की गति रूप नाम कर्म।)
१ पराघात नाम–दूसरो को अजेय मालूम हो ऐसा कर्म।
१ उपघात नाम (खुद को क्लेश पहुँचाने वाले अवयव प्राप्त हो ऐसा) कर्म।
१ श्वासोच्छ्वास नाम (श्वास लेना और छोड़ना रूप दोनों क्रिया) कर्म।
१ आताप नाम (प्रभावशाली देहकान्ति प्राप्त होना) कर्म।
१ उद्योत नाम (चन्द्र, नक्षत्रादिसम उद्योत रूप प्राप्त होना) कर्म।
१ निर्माण नाम (अंग और उपांगों का यथास्थान होना) कर्म।
१ अगुरुलघु नाम (शरीर का न बहुत भारीपन, न हल्का-पन) कर्म।
१ तीर्थङ्कर नाम (तीर्थङ्कर पद की प्राप्ति होना) कर्म।
१० त्रस दशक (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशः कीर्ति) नाम कर्म।
१० स्थावर दशक (स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशः कीर्ति) नाम कर्म।

(७) गोत्र कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ दो हैं।

१ उच्चगोत्र—अच्छे कुल में जन्म होना।
२ नीच गोत्र—नीचे कुल में जन्म होना।

(८) अन्तराय कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ ५ हैं।

१ दानान्तराय—दान देने में अन्तराय-विघ्न हो।
२ लाभान्तराय—लाभ-प्राप्ति में अन्तराय हो।
३ भोगान्तराय—उपभोग्य सामग्री के उपभोग में अन्तराय हो।
४ उपभोगान्तराय—उपभोग्य सामग्री के उपभोग में अन्तराय हो।
५ वीर्यान्तराय—पुरुषार्थ-सेवन में अन्तराय हो।

उक्त प्रकार ८ कर्मों की १४८ उत्तर प्रकृतियाँ हैं। जिनमें से

७८ जीव-विपाकी (जिसका कर्म फल जीव में हो) हैं।
६२ पुद्गल विपाकी (जिसका कर्म फल पुद्गल में हो) हैं।
४ भव विपाकी (जिसके उदय से जीव भव-संसार में रुके) हैं।
४ क्षेत्र विपाकी (जिसके उदय से जीव नियत स्थान प्राप्त करे) हैं।

जीव विपाकी ७८ प्रकृतियाँ निम्न प्रकार हैं—

५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, २८ मोहनीय, ५ अन्तराय, २ गोत्र, २ वेदनीय मिल कर ५१ तथा ५२ वाँ तीर्थंकर नाम, ५३ वाँ श्वासोच्छ्वास नाम, ५४ बादर नाम, ५५ सूक्ष्म, ५६ पर्याप्त,

५७ अपर्याप्त, ५८ सुस्वर, ५६ दुस्वर, ६० आदेय, ६१ अनादेय, ६२ यशःकीर्ति, ६३ अयशःकीर्ति, ५४ त्रस, ६५ स्थावर, ६६ प्रशस्त, विहायोगति, ६७ अप्रशस्त विहायोगति, ५८ सुभग, ६६ दुर्भग; ४ गति और ५ जाति मिल कर कुल ७८।

पुद्गल विपाकी ६२ प्रकृतियाँ निम्न प्रकार हैं—

४ आयुष्य, ४ अनुपूर्वी और विपाकी जीव ७८ के अतिरिक्त १४८ में से शेष रही ६२ प्रकृतियाँ पुद्गल विपाकी हैं। भव विपाकी ४ आयुष्य(१नरकायु, २ तिर्यञ्चायु, ३ मनुष्यायु, ४ देवायु।) क्षेत्र विपाकी ४ प्रकृति (१ नरक गत्यानुपूर्वी, २ तिर्यञ्च गत्यानुपूर्वी, ३ मनुष्य गत्यानुपूर्वी और ४ देव गत्यानुपूर्वी।)

पुण्य (शुभ कर्मों) के उदय से ४२ प्रकृतियां प्राप्त होती हैं।

१ साता वेदनीय, २ उच्च गोत्र, ३ मनुष्य गति, ४ मनुष्यानुपूर्वी, ५ देवगति, ६ देवानुपूर्वी, ७ पंचेन्द्रिय जाति, ८ औदारिक, ६ वैक्रिय, १० आहारक, ११ तैजस्, १२ कार्मण, १३ औदारिक के अंगोपांग, १४ वैक्रिय के अंगोपांग, १५ आहारक के अंगोपांग, १६ ऋषभ नाराच संहनन, १७ समचउरंस संस्थान, १८-२१ शुभ-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श, २२ अगुरु लघु, २३ पराघात, २४ श्वोसोच्छ्वास, २५ आताप, २५ उद्योत, २७ शुभ विहायो गति, २८ निर्माण, २६ देवायु, ३० मनुष्यायु, ३१ तिर्यञ्चायु, ३२ तीर्थंकर नाम और त्रस का दशक कुल ४२।

पाप (अशुभ कर्मों) के उदय से ८२ प्रकृतियाँ प्राप्त होती हैं।

ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ६, अन्तराय ५, नीच गोत्र, असातावेदनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, नरक गति, नरकायु,

नरकानुपूर्वी, स्थावर दशक, १६ कषाय, ६ कषाय, तिर्यंच गति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि ४ जाति, अशुभ विहायोगति, उपघात अशुभ वर्ण-गंध-रस-स्पर्श, ५ संहनन, ५ संस्थान (प्रथम को छोड़ कर) कुल ८२।

कर्म बंध के कारण और उदय-फल

१ ज्ञानावरण बन्ध के ६ कारण—

ज्ञानी का १ अवर्णवाद-अवगुण बोले, २ निन्दा करे और उपकार न माने, ३ अन्तरायभूत बने, ४ आशातना करे ५ द्वेष करे, विसंवाद करे। इसका फल १० प्रकार से भोगवे—५ कर्मेंद्रिय और ५ भावेन्द्रिय का आवरण।

२ दर्शनावरण कर्म-बन्ध के ६ कारण—

उपरवत सुदर्शनी का १ अवर्णवाद, २ निन्दा, ३ अन्तराय, ४ आशातना, द्वेष और विसंवाद करना।

इसका फल ६ प्रकार से भोगवे—प्रकृतिवत् ५ निन्दा व ४ दर्शनावरण।

३ (क) साता वेदनीय कर्म-बन्ध के १० कारण—

(१) प्राणानुकम्पा—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर दया-अनुकम्पा।

(२) भूतानुकम्पा—वनस्पति के जीवों पर दया-अनुकंपा।

(३) जीवानुकम्पा—पंचेन्द्रिय जीवों पर दया-अनुकम्पा।

(४) सत्त्वानुकम्पा—चार स्थावर (पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु) पर अनुकम्पा।

५७ अपर्याप्त, ५८ सुस्वर, ५९ दुस्वर, ६० आदेय, ६१ अनादेय, ६२ यशःकीर्ति, ६३ अयशःकीर्ति, ५४ त्रस, ६५ स्थावर, ६६ प्रशस्त, विहायोगति, ६७ अप्रशस्त विहायोगति, ५८ सुभग, ६९ दुर्भग; ४ गति और ५ जाति मिल कर कुल ७८।

पुद्गल विपाकी ६२ प्रकृतियाँ निम्न प्रकार है—

४ आयुष्य, ४ अनुपूर्वी और विपाकी जीव ७८ के अतिरिक्त १४८ में से शेष रही ६२ प्रकृतियाँ पुद्गल विपाकी हैं। भव विपाकी ४ आयुष्य(१ नरकायु, २ तिर्यञ्चायु, ३ मनुष्यायु, ४ देवायु।) क्षेत्र विपाकी ४ प्रकृति (१ नरक गत्यानुपूर्वी, २ तिर्यञ्च गत्यानुपूर्वी, ३ मनुष्य गत्यानुपूर्वी और ४ देव गत्यानुपूर्वी।)

पुण्य (शुभ कर्मों) के उदय से ४२ प्रकृतियां प्राप्त होती हैं।

१ साता वेदनीय, २ उच्च गोत्र, ३ मनुष्य गति, ४ मनुष्यानुपूर्वी, ५ देवगति, ६ देवानुपूर्वी, ७ पंचेन्द्रिय जाति, ८ औदारिक, ९ वैक्रिय, १० आहारक, ११ तैजस, १२ कार्मण, १३ औदारिक के अंगोपांग, १४ वैक्रिय के अंगोपांग, १५ आहारक के अंगोपांग, १६ ऋषभ नाराच संहनन, १७ समचउरंस संस्थान, १८-२१ शुभ-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श, २२ अगुरु लघु, २३ पराघात, २४ श्वासोच्छ्वास, २५ आताप, २५ उद्योत, २७ शुभ विहायो गति, २८ निर्माण, २९ देवायु, ३० मनुष्यायु, ३१ तिर्यञ्चायु, ३२ तीर्थंकर नाम और त्रस का दशक कुल ४२।

पाप (अशुभ कर्मों) के उदय से ८२ प्रकृतियाँ प्राप्त होती हैं।

ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ९, अन्तराय ५, नीच गोत्र, असातावेदनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, नरक गति, नरकायु,

नरकानुपूर्वी, स्थावर दसक, १६ कषाय, ९ कषाय, तिर्यंच गति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि ४ जाति, अशुभ विहायोगति, उपघात अशुभ वर्ण-गंध-रस-स्पर्श, ५ संहनन, ५ संस्थान (प्रथम को छोड़ कर) कुल ८२।

कर्म बंध के कारण और उदय-फल

१ ज्ञानावरण बन्ध के ६ कारण—

ज्ञानी का १ अवर्णवाद-अवगुण बोले, २ निन्दा करे और उपकार न माने, ३ अन्तरायभूत बने, ४ आशातना करे ५ द्वेष करे, विसंवाद करे। इसका फल १० प्रकार से भोगवे—५ कर्मेंद्रिय और ५ भावेन्द्रिय का आवरण।

२ दर्शनावरण कर्म-बन्ध के ६ कारण—

उपरवत् सुदर्शनी का १ अवर्णवाद, २ निन्दा, ३ अन्तराय, ४ आशातना, द्वेष और विसंवाद करना।

इसका फल ९ प्रकार से भोगवे—प्रकृतिवत् ५ निन्दा व ४ दर्शनावरण।

३ (क) साता वेदनीय कर्म-बन्ध के १० कारण—

(१) प्राणानुकम्पा—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर दया-अनुकम्पा।

(२) भूतानुकम्पा—वनस्पति के जीवों पर दया-अनुकंपा।

(३) जीवानुकम्पा—पंचेन्द्रिय जीवों पर दया-अनुकम्पा।

(४) सत्त्वानुकम्पा—चार स्थावर (पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु) पर अनुकम्पा।

५—उक्त जीवों को दुःख न देना, ६ शोक न कराना, ७ झुराना नहीं, ८ अश्रुपात कराना नहीं, ९ मारना नहीं और १० परिताप नहीं पहुँचाना।

इस का फल इस प्रकार से भोगवे—

१–५ मनोज्ञ शब्द-रूप-गन्ध-रस-स्पर्श की प्राप्ति, ६ मन चाहा सुख, ७ मनोज्ञ वचन सुनने को मिले और ८ शारीरिक सुख मिले।

(ख) असातावेदनीय कर्म बंध के १२ कारण—

प्राण-भूत-जीव-सत्त्व को १ दुःख देना २ शोक कराना, ३ झुराना, ४ रुलाना, ५ मारना-पीटना, ६ परिताप उत्पन्न करना, ७ बहुत दुःख देना, ८ बहुत शोक कराना, ९ बहुत झुराना, १० बहुत रुलाना, ११ बहुत मार-पीट करना, १२ बहुत परिताप पहुँचाना।

इसका फल ८ प्रकार से भोगवे—

१-५ अमनोज्ञ शब्द-रूप-गंध-रस-स्पर्श-की प्राप्ति हो; ६ अमनोज्ञ मन (मन दुखित रहे), ७ अमनोज्ञ वचन मिले और ८ अमनोज्ञ काया (रोगी-असुन्दर शरीर) मिले।

४ मोहनीय कर्म बन्ध के ६ कारण—

१ तीव्र क्रोध-२ तीव्र मान-३ तीव्र माया-४ तीव्र लोभ करना; ५ तीव्र दर्शन मोह और ६ तीव्र चारित्र मोह।

इसका फल २८ प्रकार से भोगवे —

उत्तर प्रकृतियाँ वत्।

५. आयुः कर्म बन्ध के १६ कारण और फल चार गति से भोगवे—

१ नरकायु बंध के ४ कारण—१ महा आरंभ, २ महा परिग्रह, ३ पंचेन्द्रिय जीवों की घात, ४ मद्य-मांस का सेवन।

२ तिर्यंचायु बन्धन के ४ कारण—१ माया (कपट), २ गूढ माया, ३ असत्य और ४ कम-ज्यादह नापना-तोलना।

३ मनुष्यायु के बन्धन के ४ कारण—१ प्रकृति की भद्रता, २ विनीतता, ३ दया भाव और ४ मदमत्सरभाव रहितता।

४ देवायु के बन्धन के ४ कारण—१ सराग संयम, २ देश-संयम, ३ बाल-तपस्या और ४ अकाम निर्जरा करने से।

६ शुभ नाम कर्म बन्ध के ४ कारण—

१ काय की सरलता, २ वचन की सरलता, ३ मन की ऋजुता ४ मद-मत्सरभाव रहितता।

इसका फल १४ प्रकार से भोगवे—

१ इष्ट शब्द, २ इष्ट रूप, ३ इष्ट गंध, ४ इष्ट रस, ५ इष्ट स्पर्श, ६ इष्ट गति, ७ इष्ट स्थिति, ८ इष्ट लावण्य, ९ इष्ट यशः कीर्ति, १० इष्ट उत्थान-बल-वीर्य-पुरुषाकार पराक्रम, ११ इष्ट स्वर, १२ कान्त स्वर, १३ प्रिय स्वर, १४ मनोज्ञ स्वर। *

---

* अच्छे या बुरे शब्द रूप गंध रस और स्पर्श दूसरों का हमें प्राप्त होता है उसे वेदनीय कर्म का फल समझना चाहिए और शब्दादि पांच बोल जो हमें प्राप्त होते हैं उसे नाम कर्म का फल समझना चाहिए।

(ख) अशुभ नाम कर्म बंध के ४ कारण—

१ काय की वक्रता, २ वचन की वक्रता, ३ मन की वक्रता, ४ मदमत्सर भाव की सहितता।

इसका फल १४ प्रकार से भोगवे—

१ अनिष्ट शब्द, २ अनिष्ट रूप, ३ अनिष्ट गन्ध, ४ अनिष्ट रस, ५ अनिष्ट स्पर्श, ६ अनिष्ट गति, ७ अनिष्ट स्थिति, ८ अनिष्ट लावण्य, ९ अनिष्ट यशः कीर्ति, १० अनिष्ट उत्थान-बल वीर्य-पुरुषाकार पराक्रम, ११ हीन स्वर, १२ दीन स्वर, १३ अप्रिय स्वर, १४ अमनोज्ञ स्वर।

(७) गोत्र कर्म बंध के १६ कारण—

८ उच्च गोत्र के, ८ नीच गोत्र के १ जातिमद, २ कुलमद, ३ बलमद, ४ रूपमद, ५ तपमद, ६ श्रुतमद, ७ लाभमद, ८ ऐश्वर्य मद; ये आठ प्रकार के मद नहीं करने से आठों श्रेष्ठ मिलते हैं और ८ प्रकार के मद करने से आठों नेष्ट (अनिष्ट) मिलते हैं।

†अन्तराय कर्मबंध के ५ कारण और इसका फल ५ प्रकार से भोगवे—

१ दान, २ लाभ, ३ भोग, ४ उपभोग और ५ वीर्य में अन्तराय डालने से बंधता है और इसीसे पांचों अन्तरायों की प्राप्ति होती है।

---

† मातृपक्ष को जाति कहते हैं, पितृपक्ष को कुल कहते हैं।

कर्मों की स्थिति और [1]अवाधाकाल

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय की स्थिति ज० अन्तमुहूर्त की, उ० तीस कोडा कोडी सागरोपम की है। अबाधा-काल ३ हजार वर्ष का है।

सातावेदनीय की ज० स्थिति, ईर्यापथिक की क्रिया की अपेक्षा २ समय की और सम्प्रदाय की अपेक्षा उ० १५ कोडा कोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल १५०० वर्ष का। असाता वेदनीय की स्थिति जघन्य ३/७ सागरोपम में पल्योपम के असंख्यात में भाग कम की, उ० तीस कोड़ा कोड़ी सागरोपम की, अबाधाकाल ३ हजार वर्ष का है।

मोहनीय कर्म की स्थिति ज० अन्तमुहूर्त की और उ० ७० कोड़ा कोड़ी सागरोपम की है, अबाधाकाल ७ हजार वर्ष का है।

नारकी तथा देवों के आयु कर्म की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उ० १३ सागरोपम की; मनुष्य और तिर्यंच आयु कर्म की स्थिति ज० अंतमुहूर्त की, उ० तीन पल्योपम से क्रोड पूर्व का तीसरा भाग अधिक की है।

नाम कर्म की स्थिति ज० आठ मुहूर्त की, उ० २० कोड़ा कोड़ी सागरोपम की है, अबाधाकाल २ हजार वर्ष का है।

कर्म प्रकृति का स्वरूप समझ कर कर्म बंध के कारणों का जो सेवन नहीं करेगा, उसको कर्म बन्धन नहीं होगा। पुराने कर्मों

---

१ कर्म बन्ध के समय से लेकर जब तक उस कर्म का उदय या उदीरणा नहीं होती तब तक के काल को अबाधाकाल कहते हैं। यह अबाधा काल उत्कृष्ट कहा है। जघन्य अन्तमुहूर्त जानना।

को नष्ट करना और नया बंधन नहीं करना इसी से 'परमात्मा' बन सकते हैं।

जैन मुनि ४२ दोष टाल कर आहार पानी ग्रहण करते हैं।

सोलह उद्गम दोष (गृहस्थ द्वारा लगने वाले)

१ आहाकम्म—(आधा कर्मी) सर्वलिंगी साधुओं के लिये बनाया हुआ आहार-पानी।

२ उद्देसिय—(उद्देशिक) साधु (नाम खोलकर) के लिये ही बनाया हुआ आहार-पानी।

३ पुईकम्मे—(पूतिकर्म) विशुद्ध आहार में आधाकर्मी का अंश मिला हुआ आहार पानी

४ मीसजाए—(मिश्रजात) साधु और गृहस्थ के लिए शामिल बना हुआ आहार पानी।

५ ठवणा (स्थापना) साधु के निमित्त रख छोड़ा हुआ आहार पानी।

६ पाहुडिया (प्राभृतिका) साधु को आहार देने के लिये मेहमान का जीमणवार आगे पीछे करके तैयार किया आहार पानी।

७ पाओअर (प्रादुष्करण) अन्धकार में प्रकाश करके दिया हुआ।

८ कीए (क्रीत) मोल खरीदा हुआ आहार पानी।

९ पामिच्चे (प्रमित्य) साधु के निमित्त उधार लाया हुआ।

१० परियट्टए (परावृत्य)-साधु के लिए सरस नीरस वस्तु को अदले बदल कर दिया आहार-पानी।

११ अभिहडे(अभ्याहृत)-किसी अन्य गांव या घर से मुनि के सामने लाया हुआ आहार-पानी।

१२ उब्भिन्ने (उद्भिन्न)-भांयरे या वर्तनादि में मिट्टी आदि छाए हुए पदार्थों को उघाड़ कर दिया हुआ।

१३ मालाहडे (मालाहृत) मेडी पर चढ़ कर कठिनता से उतार कर या बहुत नीचे से कष्ट पूर्वक निकाला हुआ।

१४ अच्छिज्जे (आछिद्य)- निर्बल से छिना हुआ।

१५ अणिसिट्ठे (अनिसृष्ट)-साझे (भाग) की चीज साझेदार की मर्जी बिना का।

१६ अज्झोयरए (अध्यवपूर)-अपने लिये बनाते हुए साधु के निमित्त कुछ अधिक बनाया हुआ।

सोलह उत्पादना दोष—(लेने वाले साधु से लगने वाले)

१ धाई (धात्री)-गृहस्थ के बाल बच्चों को धाई की तरह खेला कर आहार-पानी लेना।

२ दूई (दूती)-गृहस्थ के संदेश उसके स्वजनों से कह कर आहार पानी लेना।

३ निमित्ते (निमित्त)-निमित्त द्वारा लाभ अलाभ बता कर लेना।

४ आजीवे (आजीविका) अपना जाति, कुल आदि बता कर लेना।

५ वणीमगे (वनीपक)-मंगते (भिखारी) की तरह दीनता से लेना।

६ तिगिच्छे (चिकित्सा)-वैद्य की तरह औषधादि बता कर लेना।

७ कोहे (क्रोध पिण्ड)-डराकर या शाप देकर लेना।
८ माणे (मान पिण्ड)-छल-कपट करके आहारादि लेना।
९ माये (माया-पिण्ड) छल-कपट करके आहारादि लेना।
१० लोहे (लोभ-पिण्ड)-लोभ से अच्छा २ या अधिक लेना।
११ पुव्विंपच्छासंथव (पूर्व पश्चात्संस्तव) पहिले या पीछे दाता की तारीफ करके लेना।
१२ विज्जा (विद्यापिण्ड)-दैवप्रयोग या विद्या पढ़ा कर लेना।
१३ मंते (मंत्र-पिण्ड) मंत्रादि साधकर या देकर आहार लेना।
१४ (चूर्ण योग)-अदृश्य हो जाने आदि का अंजनादि देकर लेना।
१५ जोगे (योग पिण्ड)-योग-सिद्धियाँ बता कर आहारादि लेना।
१६ मूल कम्मे (मूल कर्म)-नक्षत्रादियोग मूल स्नानादि बना कर लेना।

दस एषणा दोष—(साधु-और दाता दोनों से लगने वाले)

१ संकिय (शंकित)-लेते देते सदोषता की शंका पड़ने पर भी लेना।
२ मक्खिय (म्रक्षित) हस्त रेखा, थाल आदि में सचित्त पानी आदि लगे हुए के हाथ से आहार लेना।
३ निक्खित्त (निक्षिप्त)-सचित्त वस्तु पर रक्खा हुआ लेना।
४ पिहिय (पिहित)-सचित्त वस्तु से ढका हुआ लेना।
५ साहरिय (संहृत)-बिना भरे हुए-कोरे-भाजन (बर्तन) से लेना।

६ दायग (दायक)-आरंभ कार्य करते हुए से लेना।
७ उम्मीसे (उन्मिश्रित)-सचित्त अचित्त मिली हुई वस्तु लेना।
८ अपरिणय (अपरिणत)-शस्त्र जिसमें परिणत न हुआ ऐसा लेना।
९ लित्त (लिप्त)-तुरन्त की लीपी हुई जगह पर या उसको लांघ कर लेना।
१० छड्डिय (छर्दित)-जमीन पर डालते या बिखरते हुए लेना।

उपरोक्त ४२ दोष टाल कर (निर्दोष) आहार पानी को संयमी साधु-साध्वीजी ग्रहण करें-लेवें और पांच मण्डल दोष टाल कर (आहार-पानी) भोगवे ये निम्न प्रकार हैं:—

पांच मण्डल दोष (खाते पीते समय के)—

१ संजोयणा (संयोजन)-लोलुपता वश भिन्न २ पदार्थों को मिला कर खाना। दूध में शक्कर आदि।
२ अप्पमाणे (अप्रमाण)-प्रमाण से अधिक भोजन-पान करना।
३ इंगाले (अंगाल)-सरस आहार की या दाता की प्रशंसा करते करते खाना।
४ धूमे (धूमे)-निरस आहार की निन्दा या घृणा करते २ अप्रसन्नता पूर्वक खाना।
५ अकारणे (अकारण)-क्षुधा वेदनीय आदि छः कारण बिना ही भोजन करना।
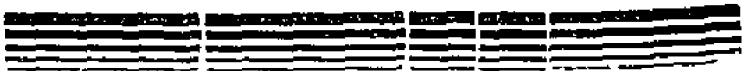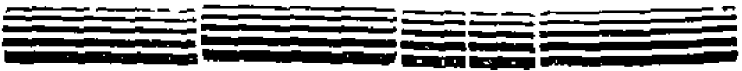
सम्वाद-विभाग

अनाथी मुनि अने श्रेणिक

राजा श्रेणिकः—

तरुणोऽसि अज्जो ! पव्वइओ, भोगकालम्मि संजया ।
उवट्ठिओसि सामरणे, एयमट्ठं सुणेमि ता ॥

मुणीः—अणाहो मि महाराय ! नाहो मज्झ न विज्जई ।
अणुकम्पगं सुहिं वा वि कंचि नाभिसमे महं ॥

सेणिओ (राया):—(पहसिओ) एयं ते इड्ढिमंतस्स कहं नाहो न विज्जई ?

होमि नाहो भयंताणं भोगे भुंजाहि संजया !
मित्तनाईपरिवुडो माणुस्सं खु दुल्लहं ॥

मुणीः—अप्पणा वि अणाहो सि सेणिआ ! मगहाहिवा !
अप्पणा अणाहो सन्तो कस्स नाहो भविस्ससि ॥

सेणिओ रायाः—अस्सा हत्थी मणुस्सा मे पुरं अंतेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोगे आणा इस्सरियं च मे ॥
एरिसे संपयग्गम्मि सव्वकामसमप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ मा हु भन्ते ! मुसं वए ॥

मुणीः—न तुमं जाणे अणाहस्स अत्थं पोत्थं च पत्थिवा !
जहा अणाहो भवई सणाहो वा नराहिवा ॥
सुणेह मे महाराय ! अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
जहा अणाहो भवई जहा मेयं पवत्तियं ॥

पुच्छिऊण मए तुब्भं झाणविग्घाओ जो कओ ।
निमंतिया य भोगेहिं तं सव्वं मरिसेहि मे ॥

\+ × + +

एवं थुणित्ताण स रायसीहो अणगारसीहं परमाइ भत्तीए ।
सओरोहो सपरियणो सबंधवो धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ॥
ऊससिय रोमकूवो काऊण य पयाहिणं ।
अभिवंदिऊण सिरसा अइयाओ नराहिवो ॥
इयरो वि गुणसमिद्धो तिगुत्तिगुत्तो तिदंडविरओ य ।
विहग इव विप्पमुक्को विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥
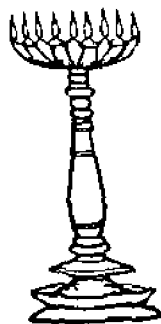
अनाथी मुनि और राजा श्रेणिक का संवाद

[राजा श्रेणिक का नाम प्रख्यात है, भंभासार और बिंबिसार भी इनके नाम हैं। एकदा राजा श्रेणिक मंडितकुचि-चैत्य तर्फ एक बगीचे में विचरण करने जाते हैं, वहाँ एक वृक्ष के नीचे शुभ ध्यान में बैठे हुए एक लावण्यपूर्ण और प्रभाविक तरुण योगी को देखते हैं। राजा आकर्षित होकर योगी के पास जाते हैं। प्रश्न पूछते हैं, जिसके उत्तर मिलते हैं और राजा मुनि-वर के प्रभाव से वशीभूत होकर उनकी तर्फ झुकते हैं। जैनधर्माव-लम्बी बनते हैं। यह वर्णन इस संवाद में है।]

[उत्तराध्ययन सूत्र के २०वें अध्ययन के आधार पर]

श्रेणिक राजा—आर्य! तरुण हो भोगकाल, क्यों छोड़ा संसार?
श्रमण बने क्यों आप हैं? सुनना चाहूँ सार ॥८

मुनि—हे राजन! मैं अनाथ हूँ, नहीं मिला,
को' नाथ यह विश्व में।
ना पाया अभी को' कृपालु मुझ पर,
सुस्नेहि सच्चा सखा।

श्रेणिक (हंस कर)—

नाथ न कोई आपका? पुण्य प्रभाव लखात। १०-२
सचमुच ही यदि आपको, मिला न कोई नाथ।
नाथ आपका मैं बनूँ! चलो आप मम साथ ॥
मित्र ज्ञाति संग महल में, रहो भोगिए भोग।
दुर्लभ देह मनुष्य का, नहीं शोभता योग ॥-११

मुनि—हे मगधेश श्रेणिक नृप, तू है आप अनाथ ॥
अनाथ होते जो स्वयं, कैसे बनते नाथ ? १३

राजा—अगणित गज अरु अश्व हैं, अरु हूं मैं मगधेश।
सुंदरियाँ मनहारिणी, अन्तःपुर प्रदेश ॥ १४

अक्षय मेरे कोष हैं, चलें दूर मम आन।
अनाथ कहना असत्य है, मानो कृपानिधान ॥ १५

मुनि—राजा आप न जानते, अनाथ का गूढ़ार्थ।
सनाथ कैसे होत हैं, अनाथ का क्या अर्थ ? १६

हे महाराजा ! सुन, तू एक ध्यान से बात।
कैसे हुआ अनाथ मैं, सुन मेरी है घात ॥ १७
कौसंबी नामा नगर, सुन्दर श्रेष्ठ जहाँ।
प्रभूत धनसंचय मिला मेरा बसना वहाँ ॥ १८

यौवन में मुझ को हुआ, विपुल आंख का दुःख।
दाह हुआ सर्वांग में, बेचैन बना नहीं सुख ॥ १९

तीक्ष्ण शस्त्र घुसा देह में, क्रोधित दुश्मन-आय।
जैसे चुभावे जोर से, दुःख सहा नहीं जाय ॥ २०
दारुण दाह ज्वर वेदना, इन्द्रवज्र की भाँत।
सर्वांगों मे व्याप्त थी, मस्तक भी था अशान्त ॥ २१

मंत्रविद्ध अरु वैद्यजी, आये आचारज।
शस्त्र कुशल किये निष्णात भी,करने आये काज ॥ २२

कुशल किये उपचार सब, निपुणता से हितकार।
फिर भी दुःखमुक्त न हुआ, अनाथता अवधार ॥ २३
पिता मुझ दुःख को मेटने, देते धन भंडार।
दुःख से मुक्ति नहीं हुई, अनाथता अवधार ॥ २४

पुत्र शोक से झूरती, माता दुःखित अपार।
तब भी दुःख से नहीं छुटा, अनाथता अवधार। २५
छोटे बड़े मम भ्रात भी, दुःख में डूबे अपार॥
मुझ दुःख कम नहीं कर सके, अनाथता अवधार।
बहिनें छोटी मोटी सब, रंज करे महाराय !॥
पर मुझ दुःख मेटा नहीं, अनाथता यह राय ! । २७
अनेक ऐसी पीर को, भोगी बारंबार ॥
वेदी बहुविध वेदना, जग में अति दुःखकार।
थक कर मैं संकल्प किया, जो होवे दुःख दूर॥
होऊँ संयति शान्त दान्त, गृहस्थाश्रम से दूर।
चिंतन चित्त में धार कर, सोया हे महाराज !॥
क्रमशः पीड़ा घट गई, बीती जैसे रात।
प्रभात में मैं स्वस्थ था, सब से आज्ञा धार॥
प्रव्रजित हो शान्ति धरी लिया धर्म आधार। ३४
तब माना मैं नाथ हूँ। अपना पर का और॥
स्थावर त्रस सब जीव का, सनाथ आनंद और।
आत्मा नदी है वैतरणी, आत्मा शामली वृक्ष सम॥
आत्मा कामदुग्धा है, आत्मा नन्दन वन सम।
आत्मा कर्ता मुक्तात्मा, दुःख सुख से प्रस्थापित॥
आत्मा मित्र अरु वैरी,[1] दुप्रतिष्ठ[2] सुप्रतिष्ठित।
श्रेणिक राय—महर्षि ! पाया मानव भव, पाये लाभ भी धन्य है॥
सनाथ सबन्धव सच्चे, जिन पथ पाये धन्य है।
संयति सर्व जीवों के, नाथ अनाथ के आप हैं॥
क्षमावूँ चाहूं आज्ञा मैं महात्मन् आप महान् हैं।

१ कुमार्गगामी, २ सन्मार्गगामी।

प्रश्न पूछ कर आपको, ध्यान में बाधक मैं बना ॥
दिया निमंत्रण भोग का, माँगूँ धृष्ट क्षमापना । ५७

\+ \+ \+ \+

† राजसिंह ने कीनी स्तुति, * अणगार सिंह की भक्ति से ।
राजा स्वजन धर्म रक्त, मुनि रहे निर्मल चित्त में ॥
विकसित रोमकूपों में, प्रदक्षिणा की नरपति ।
[1]शिरसाभिवंदन करके, विदा हुआ वो भूपति ॥
गुण समृद्ध [2]त्रिगुप्त मुनि को, [3]त्रिदंड से निवृत्ति ।
विमुक्त विचरे [4]विहग सम, निर्मोह [5]वसुधा-धृति ॥

† श्रेणिक राजा ने * अनाथी मुनिराज की । १ शिर झुका कर वंदन, २ मन-वचन-काय-गुप्ति से युक्त, ३ मन-वच-काय के दंड, ४ पक्षी, ५ पृथ्वी जैसी क्षमा-धैर्य ।

जयघोष-विजयघोष संवाद

[उत्तराध्ययन अध्य० २५ से]

माहणकुलसंभूओ, आसि विप्पो महाजसो ।
जायाई जमजन्नम्मि जयघोसित्ति नामओ ॥ १

इंदियग्गामनिग्गाही मग्गगामी महामुणी ।
गामाणुग्गामं रीयंते पत्ते वाणारसिं पुरिं ॥ २

अह तेणेव कालेणं पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसित्ति नामेण जन्नं जयइ वेयवी ॥ ४

अह से तत्थ अणगारे मासक्खमणपारणे ।
विजयघोसस्स जन्नम्मि भिक्खट्ठा उवट्ठिए ॥ ५

[विजयघोसो विप्पो जयघोसं मुणिं इमं वयणमब्बवी]

विजयघोसो विप्पो:—

न हु दाहामि ते भिक्खं, भिक्खू जायाहि अन्नओ ।
जे य वेयविऊ विप्पा, जन्नट्ठा य जे दिया ।
जोइसंगविऊ जे य, जे य धम्माण पारगा ॥ ७

जे समत्था समुद्धत्तुं परमप्पाणमेव य ।
तेसिं अन्नमिणं देयं भो ! भिक्खू ! सव्वकामियं ॥ ८

जयघोसो तवस्सी मुणी:—

न वि जाणासि वेयमुहं, न वि जन्नाण जं मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं जं च, जं च धम्माण वा मुहं ॥ ६

जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य।
न ते तुमं वियाणासि, अह जाणासि तो भण ॥१०

विजयघोसो विप्पो:—

वेयाणं च मुहं बूहि, बूहि जन्नाण जं मुहं।
नक्खत्ताण मुहं बूहि, बूहि धम्माण वा मुहं ॥११
जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य।
एवं मे संसयं सव्वं साहू! कहसु पुच्छिओ ॥१२

जयघोसो तवस्सी मुणी:—

अग्गिहुत्तमुहा वेया, जन्नट्ठी वेयसा मुहं।
नक्खत्ताण मुहं चंदो, धम्माण कासवो मुहं ॥१६
जो लोए बम्भणो वुत्तो, अग्गीव महिओ जहा।
सया कुसलसंदिट्ठं, तं वयं बूम माहणं ॥१९
जो न सज्जइ आगंतुं पव्वयंतो न सोयइ।
रमइ अज्जवयणम्मि, तं वयं बूम माहणं ॥२०
जायरूवं जहा मट्ठं, निद्धंतमलपावगं।
रागदोसभयाईयं, तं वयं बूम माहणं ॥२१
तवस्सियं किसं दंतं, अवचियमंससोणियं।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं, तं वयं बूम माहणं ॥२२
तसपाणे वियाणेत्ता, संगहेण य थावरे।
जो न हिंसइ तिविहेण, तं वयं बूम माहणं ॥२३

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया।
मुसं न वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं ॥२४

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं।
न गिण्हइ अदत्तं जे, तं वयं बूम माहणं ॥२५

दिव्वमाणुस्सतेरिच्छं, जो न सेवइ मेहुणं।
मणसा कायवक्केणं, तं वयं बूम माहणं ॥२६

जहा पोमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥२७

अलोलुयं मुहाजीविं, अणगारं अकिंचणं।
असंसत्तं गिहत्थेसु, तं वयं बूम माहणं ॥२८

जहित्ता पुव्वसंजोगं, नाइसंगे य बंधवे।
जो न सज्जइ भोगेसु तं वयं बूम माहणं ॥२९

पसुबंधा सव्ववेया य, जट्ठं च पावकम्मुणा।
न तं तायंति दुस्सीलं, कम्माणि वलवंति हि ॥३०

न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो।
न मुणी रण्णवासेणं कुसचीरेण तावसो ॥३१

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण उ मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥३२

कम्मणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥३३

एए पाउकरे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ ।
सव्वकम्मविणिमुक्कं तं वयं बूम माहणं ॥३४
एवं गुणसमाउत्ता, जे भवंति दिउत्तमा ।
ते समत्था उ उद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ॥३५

विजयघोसो विप्पो:—

माहणत्तं जहाभूयं सुट्ठु मे उवदंसियं ।३७-२
तुब्भे जइया जन्नाणं, तुब्भे वेयविऊ विऊ ।
जोइसंगविऊ तुब्भे, तुब्भे धम्माण पारगा ॥३८
तुब्भे समत्था उद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
तमणुग्गहं करेहम्हं भिक्खेण भिक्खु उत्तमा ॥३६

जयघोसो तवस्सी मुणी:—

न कज्जं मज्झ भिक्खेणं, खिप्पं निक्खमसू दिआ ! ।
मा भमिहिसि भयावट्टे, घोरे संसारसागरे ॥४०
उवलेओ होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई ॥४१
उल्लो सुक्खो य दो छूढा, गोलया मट्टियामया ।
दो वि आवडिया कुड्डे,जो उल्लो सोऽत्थ लग्गई ॥४२
एवं लग्गंति दुम्मेहा, जे नरा कामलालसा ।
विरत्ता उ न लग्गंति, जहा से सुक्खगोलया ॥४३

एवं से विजयघोसो, जयघोसस्स अन्तिए।
अणगारस्स निक्खन्तो, धम्मं सोच्चा अणुत्तरं ॥४४॥
खवित्ता पुव्वकम्माइं संजमेण तवेण य।
जयघोसो विजयघोसो, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥४५॥

जयघोष (तपस्वी मुनि) और विजयघोष

(याज्ञिक ब्राह्मण) का संवाद

[जयघोष और विजयघोष; दोनों ब्राह्मण कुल में जन्मे थे। वाराणसी उनका जन्मस्थान था। जयघोष ने एकदा गीता के रहस्य को पहिचान लिया। वे ज्ञानयज्ञ और संयमयज्ञ में राचने लगे। जैन साधु होने के बाद उन्होंने इच्छानिरोध रूप तप-अग्नि में अपने सब आशा तृष्णा रूप मल भस्मीभूत कर दिये। वे विचरते २ अपनी जन्मभूमि में पधारते हैं। विजयघोष विप्र की यज्ञशाला में वे भिक्षार्थ पहुँच जाते हैं। पहिले तो विजयघोष विप्र भिक्षा देने से इन्कार होते हैं, परन्तु उनके प्रभाव, पवित्रता, त्याग और तप से सब प्रभावित होते हैं। यज्ञशुद्धि आदि का वे रहस्य समझाते हैं। इस पर से विजयघोष बोध पाकर जिन-मार्ग पर आता है। यह वर्णन इस संवाद में है।]

(उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन २५ के आधार पर से)

जन्मे ब्राह्मण कुल में, ऐसे विप्र महायश;
विचरे महिमंडल विषे, जयघोष नामा सुयश ॥१॥
इन्द्रिय विषय निग्रह करे, जिनपथगामी महामुनि;
ग्रामानुग्राम विचरते, पहुँचते वाणारसी पुनि ॥२॥
उसी समय उस नगर में, बसते कथी ब्राह्मण;
विजयघोष वेदज्ञ वहाँ, मर्मज्ञ था यज्ञ का ॥४॥
जयघोष तपस्वी वहाँ पधारे, मास खमण पारण हेतु;
विजयघोष की यज्ञशाल में, आय कहे भिक्षा दे तू ॥५॥

विजयघोष विप्र जयघोष मुनि से कहते हैं:—

"नहीं दूं भिक्षा मैं तुझ को, भिक्षु जा अन्यत्र तू"
(क्योंकि–यह अन्न तो—)
जो वेदज्ञ ब्राह्मण हो, यज्ञार्थी व जितेन्द्रिय,
ज्योतिषादिक के ज्ञाता, धर्म के पारगामीय ॥७॥
स्व–पर आत्मा के उद्धारक, विप्र जो समर्थ हैं,
उनके अर्थे अन्न यह है, भिक्षो ! तू असमर्थ है ॥८॥

जयघोष तपस्वी मुनि:—

न जानो वेद के मुख को, न जानो क्या है यज्ञमुख ?
न जानो नक्षत्र के मुख को,जानो नहीं क्या धर्ममुख ? ॥११॥
कौन समर्थ उद्धारक है ? स्व-पर आत्मा का कहो ?
जानो नहीं तुम्हीं कुछ भी,जानत हो यदि तो कहो ॥ १२

विजयघोष विप्र–(प्रश्नों से प्रभावित होकर जिज्ञासावृत्ति से)

वेदों के मुख को मुनि कहो, यज्ञों के मुख को कहो,
नक्षत्रों का मुख क्या है ? धर्मों के मुख को कहो ॥१४॥

कौन समर्थ उद्धारक जग में, आत्मा का यह बात कहो;
मिटा दो संशय हम पूछें,मुनिवर ! हम को बात कहो ॥१५॥

जयघोष तपस्वी मुनिः—

वेद में अग्निहोत्र कहा, यज्ञों का यज्ञार्थी मुख ।
नक्षत्रों का मुख चंद्र है, काश्यप[1] जानो धर्म मुख, ॥१६॥
अग्नि सम जो शुद्ध हो, पाप रहित पूजात ।
ज्ञानी कहते विप्र वो, सदा कुशल सुजात ॥१६॥
अनासक्त स्वजनादि में, अखिन्न संयम साथ ।
संत वचन में राचते, सच्चे ब्राह्मण नाथ ॥२०॥
मेल जला कर अग्नि में, शुद्ध हो ज्यों सुवर्ण ।
राग द्वेष भय छोड़ कर, हो निर्मल ब्राह्मण ॥२१॥
तपस्वी कृश जितेन्द्रिय, देह शुष्क तप तेज है ।
सुव्रती शांति निकेतन, जिसमें ब्राह्मण तेज है ॥२२॥
घूमते फिरते बड़े छोटे, जीवों की रक्षा करें ।
अहिंसा मन वच काया से,हो ब्राह्मण दिल में धरे ॥२३॥
क्रोधवश हास्य या भय से, लोभवश झूठ ना कहे;
सदा ही सत्य बोले जो,ब्राह्मण हम उसको कहे ॥२४॥
सचित्त या अचित्त वस्तु,कम या ज्यादा हो कहीं,
बिना दिये नहीं लेवें, ब्राह्मण के गुण हैं यही ॥२५॥
मानव तिर्यंच देव से जो, [2]अब्रह्म कभी सेवें नहीं,
मन-वच-काया योग से वो,ब्रह्मचारी ब्राह्मण सही ॥२६॥
जल में जैसे कमल रह कर, अलिप्त जल से रहे,
काम भोगों से वैसा ही,रहे ब्राह्मण उसको कहे ॥२७॥

---

१ काश्यपगोत्रीय महावीर । २ मैथुन या कुशील ।

जन्मे ब्राह्मण कुल में, ऐसे विप्र महायश;
विचरे महिमंडल विषे, जयघोष नामा सुयश ॥१॥
इन्द्रिय विषय निग्रह करे, जिनपथगामी महामुनि;
ग्रामानुग्राम विचरते, पहुँचते वाणारसी पुनि ॥२॥
उसी समय उस नगर में, बसते कथी ब्राह्मण;
विजयघोष वेदज्ञ वहाँ, मर्मज्ञ था यज्ञ का ॥४॥
जयघोष तपस्वी वहाँ पधारे, मास क्षमण पारण हेतु;
विजयघोष की यज्ञशाल में, आय कहे भिक्षा दे तू ॥५॥

विजयघोष विप्र जयघोष मुनि से कहते हैं:—

"नहीं दूं भिक्षा मैं तुझ को, भिक्षु जा अन्यत्र तू"
(क्योंकि—यह अन्न तो—)
जो वेदज्ञ ब्राह्मण हों, यज्ञार्थी व जितेन्द्रिय,
ज्योतिषादिक के ज्ञाता, धर्म के पारगामीय ॥७॥
स्व-पर आत्मा के उद्धारक, विप्र जो समर्थ हैं,
उनके अर्थ अन्न यह है, भिक्षो ! तू असमर्थ है ॥८॥

जयघोष तपस्वी मुनि:—

न जानो वेद के मुख को, न जानो क्या है यज्ञमुख ?
न जानो नक्षत्र के मुख को, जानो नहीं क्या धर्ममुख ? ॥११॥
कौन समर्थ उद्धारक है ? स्व-पर आत्मा का कहो ?
जानो नहीं तुम्हीं कुछ भी, जानत हो यदि तो कहो ॥ १२

विजयघोष विप्र—(प्रश्नों से प्रभावित होकर जिज्ञासावृत्ति से)

वेदों के मुख को मुनि कहो, यज्ञों के मुख को कहो,
नक्षत्रों का मुख क्या है ? धर्मों के मुख को कहो ॥१४॥

कौन समर्थ उद्धारक जग में, आत्मा का यह बात कहो;
मिटा दो संशय हम पूछें,मुनिवर! हम को बात कहो ॥१५॥

जयघोष तपस्वी मुनिः—

वेद में अग्निहोत्र कहा, यज्ञों का यज्ञार्थी मुख।
नक्षत्रों का मुख चंद्र है, काश्यप[1] जानो धर्म मुख, ॥१६॥
अग्नि सम जो शुद्ध हो, पाप रहित पूजात।
ज्ञानी कहते विप्र वो, सदा कुशल सुजात ॥१६॥
अनासक्त स्वजनादि में, अखिन्न संयम साथ।
संत वचन में राचते, सच्चे ब्राह्मण नाथ ॥२०॥
मेल जला कर अग्नि में, शुद्ध हो ज्यों सुवर्ण।
राग द्वेष भय छोड़ कर, हो निर्मल ब्राह्मण ॥२१॥
तपस्वी कृश जितेन्द्रिय, देह शुष्क तप तेज है।
सुव्रती शांति निकेतन, जिसमें ब्राह्मण तेज है ॥२२॥
घूमते फिरते बड़े छोटे, जीवों की रक्षा करें।
अहिंसा मन वच काया से,हो ब्राह्मण दिल में धरे ॥२३॥
क्रोधवश हास्य या भय से, लोभवश झूठ ना कहे;
सदा ही सत्य बोले जो,ब्राह्मण हम उसको कहे ॥२४॥
सचित्त या अचित्त वस्तु,कम या ज्यादा हो कहीं,
बिना दिये नहीं लेवें, ब्राह्मण के गुण हैं यही ॥२५॥
मानव तिर्यंच देव से जो, [2]अब्रह्म कभी सेवें नहीं,
मन-वच-काया योग से वो,ब्रह्मचारी ब्राह्मण सही ॥२६॥
जल में जैसे कमल रह कर, अलिप्त जल से रहे,
काम भोगों से वैसा ही,रहे ब्राह्मण उसको कहे ॥२७॥

१ काश्यपगोत्रीय महावीर। २ मैथुन या कुशील।

संयम हेतु भिक्षार्थी, रसलोलुपी ना रहे।
अनासक्त गृहस्थी से त्यागी, हो ब्राह्मण उसको कहे ॥२८॥
त्यागे पूर्व संजोगो, त्यागे बांधव नात जात।
गृद्ध होवे न भोगों में, होवे ब्राह्मण जग विख्यात ॥२९॥
वेद के नाम पर हिंसा, पाप कर्म करे यदि।
तीव्र कर्मों के बन्धन में, फँस जाये असयति ॥३०॥
न साधु केश मुंडन से, न ॐ उच्चार से द्विज।
वनवास से नहीं मुनि, वल्कल[1] से नहीं तापस ॥३१॥
समता से बने साधु, ब्राह्मण हो ब्रह्मचर्य से।
तापस तप करके होवे, मुनि होते हैं ज्ञान से, ॥३२॥
(व्यवस्था ठीक वर्णों की, कर्म से हो नहीं जन्म से;
यथा गुणो तथा कर्मा, समझो वर्ण ही कर्म से.)
ब्राह्मण कर्म से होवे, होवे क्षत्रिय कर्म से,
वैश्य भी कर्म से होवे, होवे शूद्र स्व धर्म से ॥३३॥
सर्व कर्म विनिर्मुक्त, मोक्षार्थ परिश्रम करे,
वही स्नातक है सच्चा, ब्राह्मणोत्तम उसको कहे ॥३४॥
गुण धारक ऐसे विप्र, अपना अरु पर आत्म का,
समर्थ उद्धारक जो है, ब्राह्मणों परमात्म का ॥३५॥

विजयघोष विप्र—(विनम्र भाव से नतमस्तक होकर)—

"ब्राह्मणत्व कहा वास्तव, धन्य धन्य मुनि अहो!"
आप हैं वेद के ज्ञाता, यज्ञ याजक आप हो,
ज्योतिषादिक अंगों के, ज्ञाता विद्वान् आप हो, ॥३८॥

---

१ वृक्ष की छाल के वस्त्र।

आप ही पारगामी हैं, धर्मों का अग्र महामुनि !
स्व-पर कल्याण में बलवान्, कृपया भिक्षा ग्रहो मुनि ! ३९

जयघोष तपस्वी मुनि—

भिक्षा से नहीं काम मुझको, संयम का है प्रयोजन;
भयंकर घोर संसार में, भटको नहीं यह प्रयोजन ॥४०॥
भोगी आसक्त भोगों में, अभोगी अनासक्त है,
भोगी संसार में भमता, अभोगी संसारमुक्त है ॥४१॥
गिला या सूखा गोला, भित्ति पर ज्यों फैंकते।
गिला चौंटे नहीं सूखा, भोगी ऐसे ऐंठते ॥४२॥
कामी दुर्बुद्धि जगत में, फँस जात संसार में।
विरक्त जैसे जलकमल, आनंद ले अवतार में ॥४३॥

\+ × + ×

विजयघोष हर्षित हुआ, सुनी जयघोष की बानी,
संयम लिया जयघोष से, वीतराग धर्म सुन वाणी ॥४४॥
पूर्व कर्म सब क्षय किये, संयम तप अपनाये,
विजयघोष जयघोषजी, उत्तम सिद्धि पाये ॥४५॥

शास्त्र-वचन (मूल गाथाएँ)

१ ज्ञान का स्थान—

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्व संजए।
अन्नाणी किं काही, किंवा नाहिइ छेय-पावगं॥

दशवै० अ० ४ गा. १०

एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं।
अहिंसा समयं चेव, एतावन्तं वियाणिया॥

२ संयमी कौन—

तहेव हिंसं अलियं, चोज्जं अबम्भ–सेवणं।
इच्छा-कामं च लोभं च, संजओ परिवज्जए॥

उत्त० अ० ३५ गा. ३

सन्ति एगेहिं भिक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा।
गारत्थेहिं य सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा॥

उत्त० अ० ५ गा. २०

३ धर्म-प्राप्ति—

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा।
जं सोच्चा पडिवज्जन्ति, तवं खंतिं अहिंसयं॥

उ० अ० ३ गा. ८

लभन्ति विमला भोए, लभन्ति सुर-सम्पया।
लभन्ति पुत्तं च मित्तं च, एगो धम्मो न लब्भइ॥

शास्त्रवचन

१ ज्ञान का स्थानः—

प्रथम ज्ञान फिर है दया संयम का आधार।
अज्ञानी क्या कर सके ? हित अरु अहित-विचार ॥
दशवैकालिक अ० ४ गा० १०

जो हिंसा करता नहीं, वह सच्चा विद्वान्।
साम्य, अहिंसा, यह उभय, ज्ञानी की पहचान ॥ सूय०

२ संयमी कौन—

छोड़े हिंसा झूठ को, तजे अदत्तादान।
तजे भोग अरु लोभ को, उसे संयमी जान ॥
उ० ३५-३

किसी भिक्षु की दृष्टि से, उत्तम श्रावक जान।
किन्तु त्याग सुसाधु का सब से उच्च प्रधान ॥
उ० ५ २०

३ धर्म-प्राप्ति—

मानव तन यदि मिल गया, दुर्लभ सुनना धर्म।
जिसको सुन कर आचरे दया क्षमा तप-कर्म ॥
रम्य भोग मिलना सुलभ, सुलभ देव की ऋद्धि।
पुत्र, मित्र मिलना सुलभ, दुर्लभ धर्म समृद्धि ॥
उ० ३-८

४ जातिवाद-विरोध—

न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो ।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो ॥
समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बम्भणो ।
नाणेण उ मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥

उ० अ० २५ गा० ३१-३२

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ ३३ ॥

५ काल का क्या विश्वास—

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वऽत्थि पलायणं ।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥

उ० अ० १४ गा० २७

जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ ।
जाव इन्दिया न हायन्ति, ताव धम्मं समायरे ॥

४ जातिवाद-विरोध—

साधु न लुञ्चन-मात्र से, द्विज न रटे ॐकार।
होत न मुनि वनवास से, तापस चीवर-धार॥
साधु होत समभाव से, ब्राह्मण ब्रह्म विहार।
तप से तापस होत है, मुनि हो मनन-विचार॥
कर्म से ब्राह्मण होवे, क्षत्रिय होवे कर्म से।
कर्म से वैश्यजन होवे, शूद्र होवे कर्म से॥
उत्त० अ० २५ गा. ३१-२-३

५ काल का क्या विश्वास—

जिसकी मैत्री मौत से, जिसे अमरता-आश।
छूट सके जो मृत्यु से, करे काल-विश्वास॥
उ० १४-२७

जरा न जब तक दुःख दे, बढ़े न तन में व्याधि।
नहीं इन्द्रियाँ क्षीण हों, सेवो धर्म-समाधि॥
उत्त० ८-३६

काव्य-विभाग

भावना
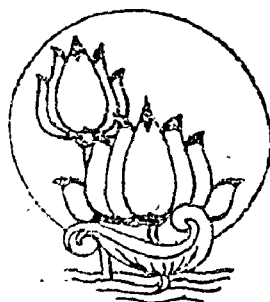
(हरिगीत)

संसार के सब प्राणियों के साथ मैत्री भाव हो।
लख कर गुणीजन हर्ष हो अरु गुण-ग्रहण का चाव हो॥
हैं जो दुखी उन पर सदा मेरा सदय व्यवहार हो।
भगवान! अरिगण की तरफ समभाव का विस्तार हो॥

(२)

है आत्म-तत्त्व अनन्त ज्ञानी शक्ति का भण्डार है,
निर्दोष है, तन से पृथक् ज्यों म्यान से तलवार है।
मैं देह से अति भिन्न हूँ मुझको प्रभो! यह भान हो,
हे देव! आप प्रसाद से मेरा अटल श्रद्धान हो॥

(३)

सुख में तथा दुख में सुहृद में शत्रु में भी सर्वदा,
संयोग और वियोग में वन में भवन में भी सदा।
समभाव मेरा हो सदा हे नाथ! दूर ममत्व हो,
संसार में सब काल में सर्वत्र एक समत्व हो॥

(४)

होकर कषायाधीन मैंने विषय-सुख सेवन किये,
चारित्र का यह भंग है मम मुक्ति-बाधा के लिए।
अज्ञान के कारण त्रिविध पापाचरण मुझसे बने,
करके कृपा करिये क्षमा अपराध हैं मेरे घने॥
(श्री अमित गति के सामायिक-पाठ से अनुवादित)

३ अमूल्य तत्त्व विचार

(हरिगीत)

अति पुण्य का संचय हुआ तब देह मानव का मिला।
तो भी अरे! संसार बन्धन का न इक आँटा हिला॥
'संसार-सुख लेते हुए सुख दूर होता ध्यान हो।
क्षण क्षण भयंकर भाव मरना! क्यों अरे बेभान हो॥
लक्ष्मी तथा अधिकार बढ़ते, क्या बढ़ा यह तो कहो।
परिवार और कुटुम्ब का बढ़ना, न बढ़ना है अहो॥
संसार की इस वृद्धि का है अर्थ नर-भव हारना।
आश्चर्य, यह पल मात्र भी तुमने न की सुविचारणा॥
चाहे जहाँ से लो भले निर्दोष सुख अरु हर्ष को।
हो बन्धनों से मुक्त आत्मा प्राप्त हो उत्कर्ष को॥
मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? रूप क्या मेरा सही?
किस हेतु यह सम्बन्ध है? रक्खूँ इसे अथवा नहीं?
यदि शान्ति और विवेक पूर्वक यह विचार कभी किया।
सिद्धान्त-आत्म-ज्ञान का तो सार सारा पा लिया॥
यह प्राप्त करने के लिए किसके वचन प्रमाण हो?
मानो कथन उसका मनुष्य, निर्दोष, ज्ञान निधान हो॥
रे आत्म तारो! आत्म तारो!! शीघ्र इसको जान लो।
'सर्वात्म में समदृष्टि हो' यह वचन दिल से मान लो॥

(श्रीमद् राजचन्द्र, गुजराती से अनुवादित)
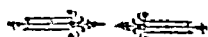
४ अडोल निश्चय

(राग—कालिंगड अथवा केदार-त्रिताल)

तू तो राम सुमर जग लड़वा दे ॥ २ ॥
कोरा कागज काली स्याही, लिखत-पढ़त वाको पढ़वा दे।
हाथी चलत है अपनी गति में कुतर भुँकत वाको भूँकवा दे ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो! नरक पचत वाको पचवा दे ॥

निज आत्म विकास करूँ मैं सदा, पलपल में घटी घड़ीघड़ी तत्परता
निज साध्य में मुझको न बाधा अड़े, तन मन वाचा नहीं विघ्न करे
कर्म-प्रकृति सब दूर करूँ अरु, आत्म स्वरूप में यत्न धरूं ॥ निज

असारता

इस तन धन की कौन बड़ाई।
देखत नयनों में मिट्टी मिलाई ॥
अपने खातिर महल बनाया, आप ही जाकर जंगल सोया। इस०
हाड़ जले जैसे लकड़ी की मोली, बाल जले जैसे घास की पोली।
कहत कबीर सुन मेरे गुनिया, आप मुए पिछे डूब गई दुनिया ॥

मातृ-भक्ति

हैं विश्व की सर्व स्त्रियाँ जनेता
भरी हुई वत्सलता अनोखी;
माँ बुद्धि से जो लखता स्त्रियों को
गृहस्थ वह साधक ब्रह्मचारी।

सर्व जगत का सन्नारीगण, अविरत वत्सल रस वरसो।
मातृभाव से रोमरोम में व्याप्त अमृतमय हो विलसो॥
जब देखुं तब बालभाव से, मन मति प्राण और यह तन।
उर में रस एकत्व चरण में लोटे करने को चुम्बन॥

---

५. जीवन विकासक्रम

वह अवसर होगा कदा, वाह्यान्तर निर्ग्रन्थ।
छेद बंध सम्बन्ध का, विचरूं महाजन-पन्थ॥१॥
उदासीनता हो सदा, सब पदार्थ के मांहि।
देह गेह चारित्र की, मूर्छा उसमें नाहि॥२॥
दर्शन-मोह व्यतीत हो, देह भिन्न "मैं" ज्ञान।
चरित मोह के नाश से, शुद्ध-रूप का ध्यान॥३॥
संक्षिप्त योग से आत्म की, स्थिरता तन-पर्यन्त।
उपसर्गों से हो नहीं, उस स्थिरता का अन्त॥४॥
योग वृत्ति संयम हित, जिन-आज्ञा-आधीन।
अन्त दशा में हो वही निजस्वरूप में लीन॥५॥

६ ब्रह्मचर्य

लखकर के नव यौवना लेश न विषय निदान।
गिने मात-भगिनी समा ते भगवान् समान॥
जग के सर्व विकारका नारी नायक रूप।
यह छोड़ा, छोड़ा सभी, है यह शोक-स्वरूप॥
एक विषय जीता अगर, जीता सब संसार।
जीत लिया नृप हो स्वयं, दल पुर सब अधिकार॥

विषयांकुर के उदय से, मिटे ज्ञान अरु ध्यान ।
लेश मद्य के पान से, होवे ज्यों बेभान ॥
जो नव वाड़ विशुद्धि से, पाले सुखमय शील ।
भव न शेष इनका रहे, वचन वज्र की कील ॥
कल्पवृक्ष समशील है, जो पालें नर नारि ।
मन, वाणी अरु देह से, अनुपम फल अधिकारि ॥
वस्तु न टिकती पात्र बिन, रहे पात्र में ज्ञान ।
बनो पात्र इसके लिए, रखो 'श्रद्धा' मतिमान ॥

'श्रीराजचन्द्र'

७ धुन

ओ प्रेम ! प्यारा, करुणा-फुआरा ।
सींचो, करो आर्द्र वपुः हमारा ॥
पा शुक्लता शान्ति सुधा-सुधारा ।
हो सर्वथा दूर सभी विकारा ॥ १ ॥
अवलम्बन तू मुझ जीवन तू ।
मृत-अन्तर--अमृत सिञ्चन तू ॥
मति तू, मन तू, तन तू, धन तू ।
मुझ में तुझ में बस तू बस तू ॥ २ ॥
सर्वथा सब सुखी होवे ।
समता सब समाचरे ॥
सर्वत्र दिव्यता व्यापे ।
सर्वत्र शान्ति विस्तरे ॥ ३ ॥

समाप्त